एक कदम परमात्मा की ओर

ईश्वर प्राप्ति



सुरेन्द्र चन्ना भारती

To

Prof Shanti

with best wishes and compliments

from

[illegible]

(Lt Col R K Langar)

16 Aug 2011

एक कदम परमात्मा की ओर

ईश्वर प्राप्ति



सुरेन्द्र चन्ना भारती

एक कदम परमात्मा की ओर

☞ प्रथम संस्करण।
आवृति - १०००।

☞ प्रकाशक : गौरी प्रकाशन,
६/५ होउसिंग बोर्ड़ फ्लैटस,
शास्त्री-नगर, जम्मू-तवी-४,
- १८०००४ (ज॰ क॰ राज्य)।

मूल्य - 61 · ०० रुपये।

आवरण कला :

☞ सुरेन्द्र चन्ना भारती।

☞ मुद्रक : Fancy Printer, Patoli, Jammu

☞ अक्षर संयोजन : *रमेश तिकू ,रीजनल कम्प्यूटर सैंटर*
(519-A सुभाष नगर जम्मू)

विषय सूची

निवेदन : दो शब्द

बहुत दिनों से मन में एक अभिलाषा थी कि, धार्मिक प्रेमियों के लिए छोटी सी पुस्तक लिखी जाए; जिसके द्धारा अनेक भक्तों के मन में उठ रहें अध्यात्मिक प्रश्नों का समाधान सरल भाषा में हो और जिस को पढ़ कर , आम बुद्धि वाला पाठक या संसारी व्यक्ति भी लाभान्वित हो।

आज कल बहुत से प्रभु प्रेमियों के मन में, गुरु धारण करने में आई बाधाओं व कठिनाइयों का समाधान व योग साधना को जानने की बहुत जिज्ञासा है। गुरु किसे, कैसे और किस प्रकार बनाया जाए; योग साधना क्या है; प्रभू कृपा कैसे हो; इस बारे में धार्मिक पुस्तकों का अध्ययन करके, सरल भाषा में प्रस्तुत यह छोटी पुस्तक आप का मार्ग-दर्शन करेगी। पुस्तक को मन से पढ़ने व अनुसरण करने से धार्मिक प्रेमी लाभान्वित होगें।

इस पुस्तक में श्री भगवानों, ऋषि, मुनियों, योगियों, गुरुओं और महापुर्षो द्धारा कहे हुए वचन व वाणिया प्रस्तुत की गई है, ताकि प्रभु प्रेमी जिज्ञासु भक्त लाभान्वित हो कर कल्याण मार्ग को अग्रसर हो।

इस पुस्तक के प्रस्तुत करने में अनेक विभूतियों व सज्जनों की कृपा मुझ पर रही है। खासकर परम पूज्यनीय श्री माता श्रीमती गौरी चन्ना व परम पूज्य श्रीगुरुदेव श्री राम प्रकाश ब्रह्मचारी जी महाराज। छोटी बहन ब्रह्मलीन श्रीमती रीता गंजू का भी बहुत ऋणी हूँ, जिसने मुझे परम पूज्य श्री गुरु महाराज से मिलवाकर, मेरे भागवत प्रेम को एक नई दिशा प्रदान की। इनके अतिरिक्त, मैं बहन श्रीमती नैनी रैना, बहन श्रीमती सुषमा लंगर, ले. कर्नल आर. के. लंगर, बहन श्रीमती गीता तिक्कू और पत्नी श्रीमती पूजा चन्ना का कृत्यज्ञ हूँ। जिन्होंने हमेशा अच्छा करने की मुझे प्रेरणा दी। मैं उन सब विभूतियों, सज्जनों, शुभचिन्तकों का धन्यवादी हूँ, जिनके लेखों व धार्मिक कृतियों से थोड़ी बहुत सहायता ली है। मैं प्रकाशक का भी कृत्यज्ञ हूँ, जिसने मेरे लेखों को पुस्तक रुप में छाप कर, बहुत ही सराहनीय कार्य किया है। मैं, स्वामी श्री हरि ओउम् तीर्थ जी का कृतज्ञ हूँ, जिनका स्नेह मेरे

साथ बना रहाहै।

मैं जानता हूँ, इस पुस्तक को लिखते समय अनेक त्रुटियां रह गई हैं, जिस के लिए, मैं प्रभू प्रेमी भक्तों का क्षमाप्रार्थी हूँ। फिर भी आशा है, कि पाठक एवम भक्तगण इस पुस्तक के पठन–पाठन से लाभान्वित होंगे और प्रभू कृपा उन पर हमेशा बनी रहेगी। हरि सिमरण के साथ धन्यवाद। पुस्तक आप को कैसी लगी। विचारों से अवगत कराईये।

तिथि :– १.१.१६६६

आप का अपना

सुरेन्द्र चन्ना भारती

परम पूज्यनीय श्रीमाता जी व परम पूज्य श्री गुरु देव महाराज के श्री चरणों में मेरा शत शत बार नमन !

सुरेन्द्र

Lt. Col. R. K. Langer

Block No. 5, Flat No. 6 , Housing Board Flats, Shastri Nagar, Jammu-180004
(J&K State) Phone:452512

प्रिय सुरेन्द्रजी,

मुझे यह पुस्तक, "एक कदम परमात्मा की ओर", प्रचारित करने में बड़ी प्रसन्नता हो रही है। आपने श्री भगवानों, ऋषि, मुनियों, योगियों, महात्माओं, साधकों और महापुरुषों की वाणियाँ व कृतियाँ और अपने धार्मिक लेखों को पुस्तकरुप देकर, प्रस्तुत करके बहुत ही सराहनीय कार्य किया है।

आप के लेखों ने भारतीय धर्म और अध्यात्म की आलौकिकता को वर्णित करके, भक्त प्रेमियों की धार्मिक जिज्ञासा को शान्त करने की अच्छी कोशिश की है व उनके उत्थान का मार्ग प्रषस्थ किया है।

मुझे आशा है, कि भक्त व पाठकगण इस पुस्तक के पठन–पाठन से लाभान्वित होकर, अपने जीवन को अध्यात्म की ओर मोढ़कर, सफलता प्राप्त करने का प्रयास करेंगे।

मैं आप की सफलता की हार्दिक कामना करता हूँ।

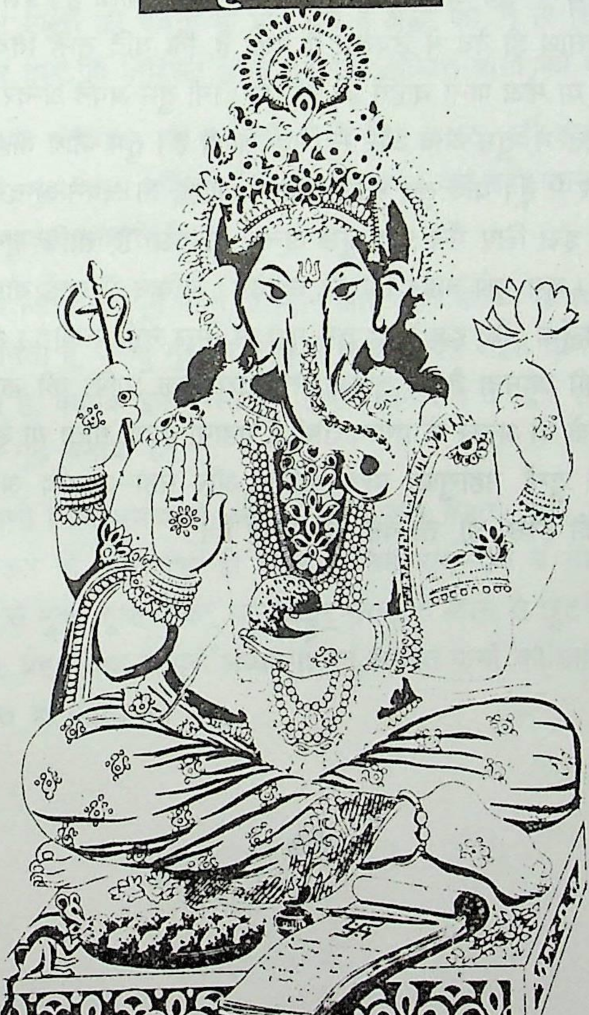
धन्यवाद।

आपका,

रवि कुमार लंगर

पहला अध्याय

अमृत वाणी



कृपामूर्ति भगवान शिव

अपने अन्तर में ही सब कुछ होने पर भी, स्वतन्त्र मन वाले तामसिक लोग, प्रयाश्चित और मुक्ति पाने के स्थान पर अपने अन्दर या अन्तर के तीर्थों को छोड़कर, बाहर के तीर्थो व मंदिरों में और इधर–उधर अन्य स्थानों में भटकते रहते हैं। ऐसे लोगों की मुक्ति कैसे हो सकती है ? क्योंकि, अपने अन्दर में स्थित प्रायागादि तीर्थ में नहीं जाने से कोई मुक्त नहीं हो सकता है। इस लिए विधाता ने सृष्टि के साथ ही वेद में उपदेश दे रखा है, कि यदि तुम्हें दिव्यलोक प्राप्ती की इच्छा हो या मोक्ष पाना चाहते हो, तो यह दोनों तुम अपने अन्दर ही पा सकते हो। इस जगत में, तुम जीव और मैं शिव दो ही हैं। तुम जीव बाहर में हो और मैं शिव अन्तर में हूँ। यदि तुम मुझसे मिलना चाहो, तो अपने अन्दर में आना या जाना होगा। इस लिए मैंने सब कुछ अन्दर ही रखा है, ताकि तुम्हें कहीं ओर जाना न पड़े। तुम मुझे बाहर खोजने जावोगे। लेकिन मैं तुम्हें बाहर नहीं मिल पावूँगा या मिलूँगा और इस तरह तुम मुझ से मिल नहीं सकोगे। अगर तुम को मेरे दर्शनों की कामना है या तुमको मेरे दिव्यलोक प्राप्ति की कामना है। तो अपने अन्दर के या अन्तर के प्रयाग तीर्थ में नहाना होगा, गोता या डुबकी लगानी पड़ेगी। जहां तुम्हें महासुख, परम–शान्ति और महा–आनन्द आयेगा। अगर मुक्ति पाने की इच्छा हो, तो वह भी सम्भव है।

–इति–

श्रीशिव

ज्ञानमूर्ति भगवान श्रीकृष्ण

बहुत जन्मों के बाद, जब जीवात्मा, मनुष्य जन्म को प्रप्त होता हुआ, मेरी पूजा अर्चना करता है; वह मनुष्य महात्मा तुल्य अत्यंत दूर्लभ है; अगर वह भक्त, ज्ञानी भी है; तो ऐसा मनुष्य साक्षाात मेरा ही स्वरुप है।

बहुत से भक्तजन अनेक देवी–देवताओं का श्रद्धापूर्वक सिमरण या पूजन करते हैं; उन भक्तों क़ी देवता के प्रति प्रेम व श्रद्धा को, मैं ही स्थिर कर देता हूँ; देवता मेरे द्वारा ही निश्चित किये हुए उन इच्छित भोगों को पाता है।

मैं, अपनी योगमाया से, सब लोगों के लिए प्रकट नहीं होता हूँ; क्योंकि अज्ञानी लोग, मुझ जन्म रहित अविनाशी परमेश्वर को नहीं जानते हैं; वे मुझे जन्मे–मरने वाला समझते हैं।

मैं, सब लोगों का पूर्व जन्म, वर्तमान और आगे भविष्य में क्या–क्या होगा, सब कुछ जानता हूँ; परन्तु मुझको कोई भी श्रद्धा भक्ति रहित प्राणी नहीं जानता व पहचानता है; क्योंकि इस संसार में इच्छा और राग व द्वेष से उत्पन्न मोह ने प्राणी को मूढ़ बनाया है।

जो प्राणी निष्कामभाव से, श्रेष्ठ व पुण्य कर्म करता हुआ, सत्य मार्ग पर चलता है; उस के पाप नष्ट हो जाते हैं; वह राग–द्वेष व मोह–माया और छल–कपट से मुक्त हुआ, भक्त, जन्म और मरण के बँधन से छुटने के लिए, मेरे शरण होकर, ब्रह्म तथा सम्पूर्ण अध्यात्मा एवं समस्त कर्मो को जानकर, अन्त में मुझे ही प्राप्त हो जाता है।

–इति–

श्रीकृष्ण

श्रीमाता गौरी चन्ना

मनुष्य जन्म बड़ा दुर्लभ है। कई जन्मों के बाद मानव योनि प्राप्त होती है। इसे पर–निन्दा, झूठ, फरेब, आलस्य, छल और कपट की बेड़ियों से जकड़ना नहीं चाहिये। परनिन्दा करने से, दूसरों को कष्ट पहुँचता है और जीवनभर के अर्जित किये पुण्य नष्ट होकर, मनुष्य के पापों की बढ़ौतरी होने के साथ–साथ, मानसिक पतन भी हो जाता है। इस तरह पापों के बढ़ जाने से मनुष्य दुखी होकर कष्टों को बढ़ाता है।

मनुष्य का सब से बड़ा दुश्मन पर–निन्दा ही है। इसे अपने पास फटकने न दें। यह थोड़े समय के लिए खुशी देकर, मन और चित्त का दुरुपयोग करके, अपने आस–पास के वातावरण को दूषित बनाकर आत्मा को मलिन करता है।

पर–निन्दा से मनुष्य को सावधान रहना चाहिये। यह बिन बुलाए मेहमान या अतिथी की तरह, एक बार घर में (मनुष्य में) घुस जाता है, तो इसे बाहर निकालना बड़ा कठिन हो जाता है। क्योंकि, तब तक इसने इन्द्रियों को उत्तेजित कर बुद्धि पर अधिपत्य जमा लिया होगा।

निन्दा मित्रों को शत्रु बनाती और शत्रुओं को क्रूर बनाती है। अच्छी बात यही है, कि जहां या जिस जगह पर निन्दा होती हो, उस जगह नहीं रहें या बैठें। ऐसा करने से, पर–निन्दा सुनने या करने से बचा जा सकता है। पर–निन्दा मनुष्य के अध्यात्मिक उन्नति कि लिए बड़ी रुकावट है। पर–निन्दा न करने से, मनुष्य दूसरों के सम्मान का, अधिक अधिकारी होता है।

–इति–

गौरी चन्ना

महामूर्ति भगवान बुद्ध

यह संसार दुखों का घर है। यहां सभी जीव अपने पूर्व जन्म के कर्मानुसार, जन्म–मृत्यु और सुख–दुख प्राप्त करता है। दुखों व कष्टों को, अपने से अलग या दूर करने या रखने के लिए, सत्य मार्ग पर चलना अति आवश्यक है। आत्म शुद्धि का सहज मार्ग, दया, क्षमा, करुणा और प्रेम है।

मनुष्य अपने निस्वार्थ कर्म व अच्छे कारियों या आचरण द्वारा निर्वाण प्राप्त कर सकता है, किसी को गुरु बनाकर या किसी गुरु का शिष्य बनकर नहीं। जीवों की हत्या करके या बलि देकर, कोई भी मनुष्य सुख, आनन्द और निर्वाण प्राप्त नहीं कर सकता है। जीव हत्या करना पाप है, हिन्सा है। ऐसे कार्य से दूर बचे रहना चाहिए। अहिन्सा परमो–धर्मः, अर्थात अहिन्सा ही परम धर्म है।

अगर संसार में शान्ति व आनन्द प्राप्त करना चाहते हो, तो सब से पहले, बुराइयों को छोड़ कर, अच्छे कार्य करो। बुराईयों को छोड़ने के लिए, किसी के शरण में जाने की आवश्यकता नहीं। बल्कि अपने अन्दर ही झांककर, अपनी बुराईयों का विषलेशन करना है; मन को टटोलना है; बुराईयों पर ध्यान केन्द्रित करना है; कि किस तरह इन्हें दुर करना है। इस के लिए छल, कपट, बुरा सोचना, हिन्सा, आलस्य, बुरा करना, कोध, बैर आदि से दूर रहना है। निर्वाण के लिए मोह, काम, क्रोध, लोभ एवम अहंकार को छोड़ना है। इन्हें अपने से दूर रखना है। क्योंकि ये सब विघ्न–बाधा लाकर, चित का ह्रास करके, आत्मा को मलिन करते हैं। चित को अच्छे व उच्च विचारों और ध्यान व धारणा से शुद्ध करना है। ध्यान और चिंतन करते समय अपने मन को, इधर–उधर भटकने नहीं देना है; यानेकि, विचार शून्य करना है। पशु, पक्षियों व अन्य जीवों पर दया करें।

–इति–

गौतम बुद्ध

दयामूर्ति भगवान महावीर

भगवान महावीर के परम पावन उपदेश, आज के त्रस्त, दुखी, भ्रमित, उपेक्षित मानव के लिए वरदान व अमृत समान है। भगवान के प्रतिपादित पांच व्रत सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचार्य, सांसारिक विषमताओं से पीड़ित मानव को शान्ति, सुख और आनन्द की अनुभूति प्रदान करता है।

भगवान महावीर ने अतुल्य वैभव, धन–दौलत, घर–परिवार, राज्य को त्याग कर व राजसी ऐश्वर्यो को ठोकर मारकर, निर्धन, उपेक्षित वर्ग के उद्धार व उत्थान के लिए, कठोरतम तप किया। क्योंकि, पीड़ित मानव के लिए, उनके मन में, करुणा, दया, प्रेम, स्नेह और समता का भाव था।

भगवान महावीर ने अपनी स्नेहमयी वाणी में कहा है :–

"न वि मुंडिएण समणो, न ओंकारेण बंभणों।
न म गुणी रण्णवासेंण, कुसचीरेण ण तावसो।।"

अर्थ :– "सिर के बाल मुड़ा लेने से, न कोई श्रमन; ओउम कहने से न कोई ब्रह्मन; निर्जन वन में रहने से न कोई मुनि और गास के वस्त्र पहनने से न कोई तपस्वी बनता है।" आगे फिर कहते हैं। "समता से श्रमन, ब्रह्मचार्य का पालन करने से ब्राह्मन; ज्ञान की उपासना से मुनी और तप करने से तपस्वी बन जाता है। अर्थात जन्म से कोई ब्राह्मन, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र नहीं होता; बल्कि मनुष्य अपने कार्य या कर्म और आचरण से ही, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र होता है।

भगवान महावीर ने, अहिन्सा, संयम और तपरुपी धर्म पर ज्यादा ज़ोर दिया है। भगवान कहते हैं, "अहिन्सा, संयम और धर्म, सभी मंगल कारियों में शेष्ट व उतकृष्ट हैं। जिस मानव के मन में किसी के प्रति हिन्सा भाव नहीं है व अपने हर कार्य धर्मानुसार करता है। ऐसे मानव को देवता भी सम्मान व नमन करते हैं। अर्थात धर्म से मनुष्य पुज्यनीय, विश्वासनीय और तपस्वी बनता है।

–इति–

वर्धमान महावीर

धर्मवीर गुरु गोविंद सिंह

गुरु गोविंद सिंह, सफल योद्धा, राष्ट्र निर्माता, देशप्रेमी, परोपकारी, धर्मात्मा ही नहीं, बल्कि उसे भी ऊपर उठकर, आलौकिक रुप में, एक महामानव, धर्मवीर व संतसिपाही भी थे। जहां उन्हों ने समाज में फैले अन्ध–विश्वास, छुआ–छूत, ऊँच–नीच, व कुरीतियों का विरोध किया,; वहीं दूसरी ओर, मृत प्राय भारतीय मानस को अपने औजस धार्मिक विचारों द्वारा बदलने का अथक प्रयास भी किया। विदेशीय अताताईयों द्वारा भारतियों का बलात धर्म परिवर्तन, कत्ल, हत्या, लूटमार, मंदिरों का गिराये जाने का उन्होंने जमकर विरोध किया। उन्हों ने अपने आप को, परमेश्वर या परमेश्वर का अवतार नहीं माना। उन्हों ने अपनी अमृत समान वाणी द्वारा विचित्र नाटक में कहा है :–

"जो हमको परमेसर उचरि है। ते सब नरक कुण्ड़ में परि है।।
मोको दास तवन को जाने। या मैं भेद न रंचक मानो।।
मैं हौं परम पुरुष का दासा। देखन आयो जगत तमासा।।"
गुरु महाराज आगे कहते हैं,
"मानस की जात सबै एक पहिचानबो"।

"सभी मानव एक ही ईश्वर की संतान हैं। कोई भी शत्रु–मित्र, स्वधर्मी–परधर्मी, छोटी जात–बड़ी जात, स्वदेशी–परदेशी नहीं है। न ही मानव और मानव के बीच कोई भेद या अन्तर है। परम–शक्ति, ईश्वर या अकाल पुरुष एक ही है, जिसे मानव अनेक नामों से स्मरण करता है। वह परम शक्ति स्वयम्भू है, अर्थात जीवों की उत्पती भी वहीं से होती है और अन्त में विलीन भी उसी में होता है। जैसे अग्नि में से अग्नि की लपटें निकलकर, फिर उसी अग्नि में मिल जाती हैं और नदी के पानी में एक तरंग के बाद अनेक तरंगें उठकर अन्त में उसी पानी में विलीन होती हैं। ऐसे ही उस विश्वरुप से, अनेक रुप प्रकट होकर, अन्त में उसी में मिल जाते हैं।

–इति–

गोविन्द सिंह

स्वामी विवेकानन्द

प्राचीन काल में, हमारे देश में, आध्यात्मिक भाव की अतिशय उन्नति हुई थी। हमें आज वह प्राचीन गाथा व आध्यात्म को फिर से स्मरण करना होगा और उसी पथ पर चलना होगा। प्राचीन कालिक गौरव के स्मरण में सब से बड़ी आपती यह है, कि हम कोई नवीन काम करना पसन्द ही नहीं करते और केवल अपने प्राचीन गौरव के स्मरण से, सन्तुष्ट होकर अपने को सर्वश्रेष्ठ समझने लग जाते हैं। हमें इस सम्बंध में सावधान रहना चाहिये। प्राचीन काल में अनेक उच्च कोटि के सन्त–महात्मा, ऋषि–मुनि हुए थे। उन्हें अपने अनुभवों द्वारा सत्य का साक्षात्कार हुआ था। किन्तु प्राचीन काल के स्मरण से वास्तविक उपकार तभी होगा, जब हम उनके द्वारा प्रस्तुत पथ पर चल कर, वैसे ही सदृश ऋषि हो सके। केवल इतना ही नहीं, मेरा विश्वास है, कि हम ओर भी श्रेष्ठ ऋषि हो सकेंगे। भूतकाल में हमारी खूब उन्नति हुई थी। मुझे उस समय को स्मरण करते हुए बड़ा गौरव अनुभव होता है।

हमारे वेद व वेदवाणी किसी पुरुष के मुंह से नहीं निकली है। उसके साल और तिथि का अभी निर्णय नहीं हुआ है और न आगे चलकर ही होगा। हम हिन्दुओं के मातानुसार वेद अनादि और अनन्त है। वेद कभी लिखे नहीं गये, न कभी सृष्ट हुए हैं। वे ईश्वरीय ज्ञानराशि है। वे अनादि काल से वर्तमान है। जैसे सृष्टि अनादि और अनन्त है। वैसे ही ईश्वर का ज्ञान भी अनन्त है। वेद का अर्थ है, ईश्वरीय ज्ञान की राशि। विद धातु का अर्थ है, जानना। यानेकि, ईश्वरीय ज्ञान को जानना।

–इति–

विवेकानन्द

योगमूर्ति श्रीयोगेन्द्र विज्ञानी

सब से प्रथम और प्राचीन मार्ग हमारा वैदिक वेदान्त मार्ग है। जिसके द्वारा ज्ञान–प्राप्ति करने के अनेक साधन, विवेक, वैराग्य, शमदि, षट सम्पति आदि है। इनका साधन व मनन करने से मनुष्य तत्वज्ञान का अधिकारी होता है। इस वेदान्त साधन को बिना किये, कोई ब्रह्मतत्व को प्राप्त नहीं होता और न ही जानने का अधिकारी हो सकता है। जैसे कोई व्यक्ति दूसरे देश को जाता है। वहाँ जाने के लिए, वह अपनी आवश्यक सम्पति या व्यय के लिए, धन साथ ले जाता है, ताकि मार्ग में उसे कोई कष्ट न हो और वह बिना किसी बाधा के गंतव्य स्थान पर ठीक तरह से पहुच जाए। उसी प्रकार इस अध्यात्म पथ पर, चलने वाले साधक को, यह साधन संपति या अर्जित पुन्य अवश्य होने चाहिये; नहीं तो वहां, पहुंचा ही नहीं जा सकता है।

वेदान्त कहता है, कि विवेक, वैराग्य, शमादि, षट सम्पति के साथ–साथ, श्रवन, मनन तथा निदिध्यात्म से चित्त की शुद्धि होकर, ज्ञान की प्राप्ति होगी और इस तरह ज्ञान से मोक्ष होता है। बिना अध्यात्म ज्ञान के, शतकोटि जन्म लेने के बाद भी मनुष्य, ईश्वर से नहीं मिल सकता है। उसकी मुक्ति नहीं हो सकती है। यह वेदान्त का तत्व सार सिद्धान्त है।

वेदान्त मार्ग के वेद, उपनिषद, ब्रह्मसूत्र, श्रीशंकराचार्य के रचित ग्रन्थ समूह तथा योग वशिष्ठादि बड़े बड़े ग्रन्थ हैं। वे सभी ग्रन्थ, मुक्ति, तर्क, वितर्क एवं श्रुति द्वारा मिथ्यात्व का प्रतिपादन करके, केवल निरतिशय, निर्विशेष, निराकार, परमब्रह्म का प्रतिपादन करते हैं।

–इति–

योगेन्द्र विज्ञानी

भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभूपाद

हमें इस संसार की अवस्था पर विचार करना चाहिये। यह मनुष्य जीवन, भागवत–ज्ञान प्राप्त करने के लिए बनाया गया है – पशुओं के समान अहार, निद्रा, भय और मैथुन में ही अपने बहुमूल्य जीवन को व्यर्थ करने के लिए नहीं। सभ्यता का यह विकास नहीं है। भगवान कहते हैं, कि यह शरीर केवल इन्द्रिय तृप्ति के लिए और कठोर परिश्रम करते रहने के लिए नहीं बनाया गया है।

कठोर परिश्रम करना और साथ में इन्द्रिय तृप्ति के द्वारा अपने आप को सन्तुष्ट करना, सूकरों का कार्य है, मनुष्यों का नहीं है। मनुष्य तप या तपस्या करना सीखे। विशेषकर भारत में अनेक महान ऋषियों, साधकों, राजाओं और अनेक ब्रह्मचारियों एवं सन्यासियों ने अपना जीवन, महान तपस्या करने में व्यतीत किया है। उस तपस्या का उद्धेश्य यही था, कि इस संसार में मनुष्य और अधिक बन्धनों में न फंस जाए।

भारत तपोभूमि है, परन्तु हम इस महान तप को भूल रहे हैं। अब हम उसे तकनीक की भूमि बना रहे हैं। आश्चर्य होता है, कि अब भारतीय इस तपस्या का प्रसार–प्रचार नहीं कर रहे हैं; जब कि भारत अनादिकाल से धर्म का क्षेत्र रहा है।

इस कलियुग में, न केवल भारत में, अपितु संसार के सभी स्थानों पर मानवीय मूल्य व प्रत्येक वस्तु निम्न कोटि की हो गई है। इस कलयुग में आयु भी कम हो गई है और आत्मसाक्षात्कार की ओर मनुष्यों को कोई रुचि ही नहीं है। यदि रुचि है भी, तो वह अनेकानेक धोखेबाज़ नेताओं द्वारा मार्गभष्ट कर दिये जाते हैं। यह कलयुग, घोर भष्टाचार का युग है। अतः भगवान श्री चैतन्य महा–प्रभू की, हरे कृष्ण कीर्तन करने की विधि ही सर्वोतम और सर्वाधिक सरल मार्ग है।

–इति–

स्वामीप्रभूपाद

त्यागमूर्ति महात्मा गांधी

मैं अपने आप को सनातनी हिन्दू समझता हूँ। क्योंकि, मैं वेद, उपनिष्ध, पुराण, जन्म–मरण व ईश्वर के अवतारों में विश्वास करता हूँ। मैं मूर्तिपूजा में भी विश्वास करता हूँ। क्योंकि, मुझे मुर्तिपूजा में कोई बुराई नज़र नहीं आती है। मैंने धार्मिक पुस्तकों का भी अध्ययन किया है। सब से ज़्यादा मैं, श्रीमद्‌भागवत गीता व तुलसीकृत रामायण से प्रभावित हूँ। मैं छुआ–छूत, ऊँच–नीच में विश्वास नहीं करता हूँ। छुआ–छूत ने हमारे देश को, कई पीड़ियों व शताब्दियों से नुकसान किया है। मेरी इच्छा कोई राज्य या राज प्राप्त करने की नहीं है। मेरी परम इच्छा मोक्ष प्राप्त करने की है। मोक्ष प्राप्त करने के लिए, जंगल में रहने के बजाए, लोगों के बीच रहकर निष्काम भाव से सेवा करके प्राप्त करने की है। मैं, शान्ति, सच्चाई और हृदय की शुद्धता में विश्वास करता हूँ।

हमारा हिन्दू धर्म गंगा की तरह पवित्र व शुद्ध है। हां इस में कुछ समय से अशुद्धियाँ आई हैं; जिन्हें दूर करने का प्रयत्न करना है। हमें अपने बारे में जानना है कि हम क्या हैं; कहां पर हैं। हमें सात्विक रहकर, यम–नियम द्वारा शुद्ध व पवित्र बनना है। मेरे लिए ईश्वर, प्रेम और सच्चाई का नाम है। ईश्वर सब जीवों के दिलों में वास करते हैं। हम से ज़्यादा, हमारे बारे में ईश्वर ही जानते हैं। ईश्वर पवित्रों से पवित्र और शुद्धों से शुद्ध है। ईश्वर इस ब्रह्माण्ड के कर्ता–धर्ता व निर्माता है। सभी जीव ईश्वर को, अलग–अलग नामों से पुकारते हैं; लेकिन ईश्वर एक है।

–इति–

मोहनदास गांधी

संत श्री आशा राम

योग साधकों के ध्यान में रखने योग्य बातें :–

बहुत खुली जगह पर ध्यान में या ध्यान करने नहीं बैठें। ध्यान करने के लिए, एकान्त कक्ष बहुत अच्छा रहता है। ध्यान कक्ष को सदैव साफ सुथरा व शुद्ध रखें। सुगंधित गगूल या अगरबती या अन्य धूप कमरे में करते रहें। ध्यान कक्ष में किसी अन्य प्राणी का प्रवेश निषिद कर दें। हा यह बात ध्यान रखें, कि यदि साधना में कोई ऊँचा है, तो उसे अवश्य प्रवेश कराएं। ऐसा करने से साधक को लाभ ही होगा। यदि एकांत कक्ष न हो, चिन्ता न करें; तो भी घर का या घर में कमरे का कोई कोना, पर्दा आदि लगा कर सुरक्षित करलें। ध्यान का स्थान एवं आसन शुद्ध व साफ सुथरा हो। स्थान बार–बार बदलें नहीं। आसन के लिए कोई ऊनी वस्त्र तीन, चार बार तह किया हुआ या कोई गर्म कम्बल रखें। उस पर शुद्ध सूती वस्त्र बिछा लें। अपने शरीर के अनुकूल हल्का व्यायाम, कुछ आसन एवं प्राणायाम नियमित रुप से किया करें।

प्रातः काल गुनगुनाते पानी से स्नान करके स्वच्छ वस्त्र पहनें। ऐसा करने से शरीर में स्फूर्ति आयेगी। अपना बिस्तर व कपड़े अल्ग रखें। क्योंकि, एक साथ रखने से दूसरों के संस्कारों के सूक्ष्म परमाणू और विचारों का प्रभाव ध्यान में बाधक बनेगा। भोजन करके, तुरंत ध्यान में या ध्यान करने नहीं बैठें। कम से कम दो या तीन घन्टों के बाद, ध्यान में बैठना चाहिए। ध्यान पदमासन, कमलासन, सिद्धासन या सुखासन, जो आसन अनुकूल लगे, उसमें बैठ कर करें। यह बात अवश्य समझ लें, कि ध्यान करते समय अपने मन को चिन्ताओं से दूर रखें।

–इति–

सन्त श्री आशा राम

पवन पावन दलाई लामा

आज जब हमें यह बहुत दुर्लभ मनुष्य जीवन मिला है और धर्म अभ्यास की सभी सुविधाएं प्राप्त है; तो इस दुर्लभ जीवन का हमें सदुपयोग करना चाहिये। परन्तु यह बात स्पष्ट है, कि हम सब सुख और शान्ति चाहने वाले हैं, न कि दुख। सुख और दुख की उत्पति अपने चित की प्रविति पर निर्भर है। अपना मन, शान्त और वश में है, तो सुख है और अगर मन अशान्त या अदान्त है, तो वर्तमान समय में भी, दुख उत्पन्न करता है। इस तरह भविष्य में भी अनेक दुखों का कारण बनेगा। उद्धार चित होने पर अच्छा स्वभाव होगा, जिससे अच्छे कर्म होंगे और अदान्त या अशान्त चित होने पर अनेक अकुशल कर्म होंगे, जो दुख का कारण बनेगा।

किसी भी विषय पर चिन्तन के समय, मन को अन्य विषयों पर भटकने से रोकने और नियन्त्रण में रखने की चेष्टा ही समाधि का अभ्यास है। साधारणतः हम चिन्तन और मनन की बात करते हैं। वह यहीं प्रक्रिया है कि अपने चित्त को, इस तरह के अभ्यास से, उसी चिन्तन – विषय का स्वरुप देना है। मनन करना दो प्रकार के हैं – पहला अनित्यता और दूसरा नैरात्मा। जैसे किसी विषय को लक्ष्य बनाकर, चिन्तन करना अथवा श्रद्धा, करुणा, बोधिचित की भावना के जैसे, अपने चित को उसी ध्यान विषय का स्वरुप बनाना। चिन्तन की क्रिया भी दो प्रकार की है – एक है मनन के विषय की बार–बार परीक्षा करके विश्लेशण करना और दूसरा है विषय पर चित्त एकाग्र कर स्थिर रखना।

–इति–

दलाई लामा

ले. कर्नल आर. के. लंगर

मैंने आज तक जितनी भी धार्मिक व आध्यात्मिक पुस्तकों का अध्ययन किया है। इन सब पुस्तकों में, सब से ज़्यादा प्रभावित श्रीमद्भागवतगीता से रहा हूँ। संसार के सभी धर्म व मज़हबी ग्रन्थों में, गीता जी का स्थान अद्बितीय है। भागवतगीता को भारतीय संस्कृति का प्रतीक कहा गया है।

भगवान श्रीकृष्ण के श्रीमुखकमल से प्रकट कर्मयोग, ज्ञानयोग, ध्यानयोग व भक्तियोग की व्याख्या ब्रह्मांड की सर्वश्रेष्ठ अमृत–तुल्य रचना या ग्रन्थ ही नहीं, बल्कि अद्बितीय ज्ञान का भंडार भी है। श्रीगीता में प्रस्तुत ज्ञान केवल भारतीयों के लिए ही नहीं, अपितु संसार की सभी मानव जाति के उत्थान के लिए उपयोगी है। गीताजी, कर्म–ज्ञान–भक्ति व ध्यान का मनोरम समन्वय है और हर प्रकार के प्राणी के लिए स्मृति ग्रन्थ है।

योगेश्वर श्रीकृष्ण ने मानव जाति के उत्थान के लिए, अर्जुन को निमित बनाकर, श्रीगीता का ज्ञान सारे विश्व को प्रदान किया है, ताकि मोह–माया, छल–कपट, लोभ–हिन्सा, क्रोध–आल्स्य, ऊँच–नीच व भोग–वासना से पीड़ित मानव, विषय–विकारों को त्यागकर व छोड़कर, ईश्वरोर्पणभाव से सतपथ व ईश्वरमार्ग को अग्रसर हो । शुद्ध चित में ईश्वरीयक्षान प्रकट होकर, भक्त भवबन्धन से मुक्त हो कर, श्रीकृष्णमय या ईश्वरमय हो जाता है।

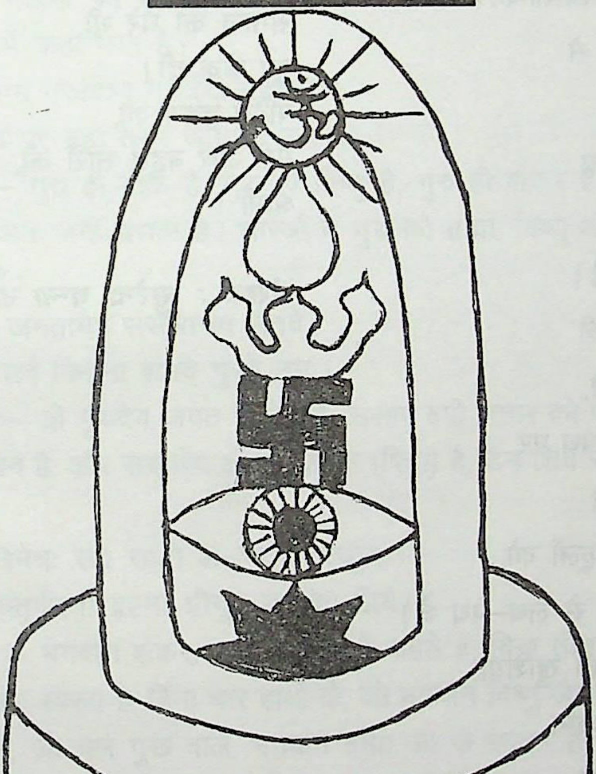
भगवान श्रीकृष्ण ने जहां ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग और ध्यानयोग की सुन्दर रुप से व्याख्या की है। वहीं दुसरी ओर योग क्या है, को सपष्ट व स्टीक भाषा में प्रस्तुत किया है। ताकि साधारण मनुष्य जन भी इसे भली भांति समझ व जान सके। भगवान श्रीकृष्ण अपने सन्देश में कहते हैं, कि "हे मनुष्य, तू इस संसार का त्याग नहीं कर; संसार में रहकर, अच्छे कर्मो के प्रयास द्वारा, संसार की प्रगति व उन्नति में योगधान कर" ।

–इति–

आर. के. लंगर

दूसरा अध्याय

ईश्वर -प्राप्ति



माता श्री नमन

श्रीमाँ

हे ममता की,
मूर्ती।
सत्य
और विश्वास की।
करुणा से
कृत,
देव तुल्य
माता,
प्रणाम है।
अधर्म की
आग को,
धर्म के पथ पर,
अग्रसर।
कितने फूलों को,
जो धूल से लथ–पथ थे।
जीवन की खुशियां,
और मुस्कान
लौटा दी।
क्या,
कुछ नहीं सहा।
तोड़ दिया,
अंध विश्वास को।
रुढ़ियां जो,
पाखंड के वेश में,
समाज को घेरे थी,
दूर फेंक दी।
पवित्र ह्रदय की,
मेरी और बहुत सारों की,
श्रीमाँ !

लेखक :- सुरेन्द्र चन्ना भारती

गुरु की पहचान

हमारे देश के असंख्य महान विभूतियों, श्रीभगवानों, ऋषियों, मनीषियों, महात्माओं, साधुओं, साधकों, ज्ञानियों, ध्यानियों, और योगियों ने गुरु महिमा, गुरु परम्परा व गुरु की क्षमताओं के बारे में बहुत कुछ कहा व लिखा है।

गुरु शब्द में "गु" अन्धकार का द्योतक है और "रु" तेज का द्योतक है। इस प्रकार "गुरु" शब्द का अर्थ, अज्ञान रुपी अन्धकार को हरने वाला प्रकाशमय ब्रह्म है।

गुरु महिमा की धर्म शास्त्रों में अच्छी तरह से व्याख्या की गई है। श्रीगुरुगीता में कहा गया है।

'गुरुर्ब्रह्म गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुदेव पर ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः।।'

अर्थ :– गुरु ही ब्रह्मा है, गुरु ही विष्णु है, गुरु ही शंकर है एवं गुरु ही प्रब्रह्म है। अतः उन्हें प्रणाम है। शास्त्रों ने गुरु को ब्रह्मा, विष्णु और महेश का रुप जाना है।

'हेतवे जगतामैव संसाराणव सेतवे।
प्रभवे सर्व विधानां शंभवे गुरवे नमः।।'

अर्थ :– जो गुरुदेव जगत के हेतु हैं; संसार रुपी सागर को पार करने को सेतु के समान है; और सब विधाओं के जनक (पिता) है; उन शिव रुपी गुरु–देव को प्रणाम।

'अ–त्रिनेत्रः सर्व साक्षी अ–चतुबहिरच्युतः।
अ–चतुर्वदनो ब्रह्मा श्रीगुरु काथित प्रिये।।'

अर्थ :– भगवान शंकर, माता पार्वती से कहते हैं; बिना तीन नेत्रों के, जो सर्वक्ष शिव का स्वरुप है; बिना चार हाथों के, जो भगवान विष्णु जैसे है; और बिना चार मुख के, जो चार मुख वाले, भगवान ब्रह्मा जी के समान है; ऐसे गुरु देव को ब्रह्मा विष्णु और शिव रुप कहा गया है; अतः तीनो उस आदि शक्ति परम पिता परमेश्वर, महेश्वर का ही रुप है; उसी शक्ति के प्रभाव से सृजन, पालन और संहार आदि कार्य करने के समर्थ होते हैं; जिस प्रकार परम पिता ब्रह्माजी, सृजन का कार्य करते हैं; उसी प्रकार गुरुदेव भी साधकों का निर्माण करते हैं।

गुरु नानक देवजी ने भी अपनी वाणी में; गुरु को, प्रभू, ईश्वर, परमेश्वर, वाहेगुरु का रुप जाना है। गुरुजी कहते हैं :–

"सतिगुर विच आपु रखी ओनु करि परगुट आखि सुणाइआ।"

अर्थ :– गुरु और ईश्वर एक ही है; दोनों में सिर्फ इतना ही भेद है, कि ईश्वर गुरु का ही वास्तविक रुप है; और गुरु मनुष्य के चोले में ईश्वर रुप है; ईश्वर गुरु के अन्दर बैठकर ही बोलता है।

नानक देव जी ने गुरु की महिमा व ईश्वर प्रेम का जहां गुणगान किया है। वहीं नकली गुरुओं से सावधान रहने को भी कहते हैं। नानक जी आगे कहते हैं :–

"गुरु पीरु सदाए मंगण जाइ। ताकै मूलि न लगीए पाइ।।
धालि खाहु किछ हथहु देइ। नानक राहु पछाणाहि सेई।।"

अर्थ :– अगर कोई साधू या मनुष्य, गुरु और पीर बन कर, अपने शिष्यों और सेवकों से धन मांगता फिरता है; तो ऐसे बने गुरु या पीर के हा नहीं जाएं और उनके चरणों में शीश अथवा माथा नहीं झुकाइये; जो महात्मा या साधु या पीर या गुरु, खुद परिश्रम या मैहनत की कमाई करके अपना जीवन बिताता है; और अपने सेवकों, साधकों की बिना भेदभाव के मुफ्त सेवा करता है; ऐसे महात्मा, साधु, पीर, गुरु की खोज करनी चाहिये।

कबीर दास जी ने भी गुरु की महिमा का खूब गुणगान किया है। कबीर जी कहते हैं :–

"कबीरा हरि के रुठते, गुर के सखे जाई।
कहे कबीरा गुरु रुठते, हरि नहीं होत सहाई।।"

अर्थ :– अगर ईश्वर हम से रुठ भी जाए, तो गुरु की शरण में जाकर, ईश्वर को मना सकते हैं। लेकिन अगर गुरु ही रुठ जाए तो, ईश्वर भी हमारी सहायता नहीं कर सकते हैं।

पूर्ण गुरु और सच्चे शिष्य के बारे मे कबीर जी आगे कहते हैं :–

"सिष तो ऐसा चाहिये, गुरु को सरबस देय।
गुरु तो ऐसा चाहिये, शिष को कछू न लेय।।"

अर्थ :– गुरु ऐसा होना चाहिये, जो बिना दान–दक्षिणा के या लालच के, शिष्य को अपना सब कुछ दे सके; शिष्य को प्रभू से एकाकार करा सके और शिष्य ऐसा गुरु प्रेमी हो, जो अपना तन, मन, धन बिना गुरु के मांगे, गुरु के

चरणों में अर्पण कर सके।

गुरु अमरदास जी ने भी मोहजाल में फंसे हुए मनुष्यों को , प्रभू की राह पर ले जाने वाले गुरुओं की महिमा का, इन शब्दों मे गुणगान किया है।

"गुरु सबदि मिलहि से बिछुड़हि नाहीं सहबे सचि समावणिआँ।"

अर्थ :– जब हम सतगुरु के द्वारा, शब्द रुपी प्रभू नाम पकड़ लेते हैं और प्रभू नाम मनन कर लेते हैं; तब शब्द हमें छोड़ता नहीं है; अपने साथ लेकर, परमात्मा में समा जाता है। तब हम ईश्वर से एकाकार होकर प्रभू–मय हो जाते हैं।

महाराज चरण सिंह जी ने भी, गुरु की महिमा करते हुए कहा है:–

"गुरु बचन करो आधारा। गुरु दर्श निहारो सारा।।"

गुरु जी आगे कहते हैं :–

"गुरु चरन बसे अब मन में। मैं सेऊँ दम–दम तन में।।
फिर प्रीत लगी घट धुन में। चढ़ पहुँची पहिली सुन में।।"

पल्टू साहिब ने भी अपनी वाणी में, योग्य गुरु की पहचान के विषय में कहा है। गुरु वह है जो, हमारी आत्मा को अनहद शब्द के साथ जोड़ कर प्रभू परमेश्वर से मिलाता है।

पल्टू साहिब आगे फिर कहते हैं :–

"संत सनेही नाम है, नाम सनेही संत।
नाम सनेही संत, नाम को वही मिलावे।
वे है वाकिफकार, मिलने की राह बतावै।।"

साई बुल्ले शाह ने भी अपनी वाणी में, गुरु का इस तरह गुणगान किया है :–

"ना खुदा मसीते लभदा, ना खुदा खाना काबे।
ना खुदा कुरान कताबा, ना ख़ुदा नमाज़े।।
ना खुदा मैं तीरथ डिठा, ऐने पैड़े झाके।
बुल्ले शोह जद मुरशद मिल गिआ, छूटै सभ तगाड़े।।"

भगवान गोपी नाथ जी ने भी, ईश्वर का गुणगान करने के साथ–साथ, समाज में फैले अन्धविश्वास और बुराईयों को दूर करने का अथक प्रयास किया। उन्होंने आशा–तृषणा, छल–कपट, और वासनाओं के जाल में फंसे लोंगों को जगदाबिभावों से मोढ़ कर, अन्तरमुखी करने का भरपूर प्रयास किया।

भगवान गोपीनाथ जी, लोगों से कम बातचीत करते थे, लेकिन उनके दुखों व कष्टों का समाधान सरलभाषा में करके चिन्ता मुक्त करते थे। उनकी नज़रों में सभी बराबर थे।

मेरा भी पूज्य श्रीगुरु महाराज के प्रति प्रेम व सम्मान इन पंक्तियों में प्रस्तुत है :–

"श्री गुरु महाराज है मेरे, नाथों के नाथ,
चरण कमल में बिठाकर, पकड़ा मेरा हाथ।
साक्षात शिव का रुप है, रहते मानस साथ,
मिला दिया शिव से, दिखा दिया सत्य पाथ।
अशान्त मन और चिन्ता, दूर किया दुख ताप,
बलिहारी गुरु आपके, मन मैं आप ही आप।
गुरु पुर्णिमा सब ६३ का दिन, मेरे लिए बड़भाग्य,
दिखा दिया है दर्श, और मिटा दिया संताप।
भीनी सुगन्ध से, निर्मल किया मेरा मन तन,
अनहद शब्द से जोड़कर, जोड़ा ब्रह्म से मन।
नाम के पावन शब्द से, सुरति गगन चढ़ाया,
आनन्द ही आनन्द में, अपने आप को पाया।
आशा और तृष्णा से, मेरा किया छुटकारा,
नमन करता है सुरेन्द्र, आपको गुरु बारं बार।
श्री गुरु महाराज है मेरे नाथों के नाथ,
चरण कमल में बिठाकर पकड़ा मेरा हाथ।"

शास्त्रों में गुरु को परम कहा गया है। परम का अर्थ परे हैं। अर्थात मोह–माया से परे; संसार की कामनाओं व वासनाओं से परे।

गुरु वह है, जो लालच, आलस्य, अहंकार, मान–सम्मान, अपमान और धन–दौलत का याचक या इच्छुक नहीं और न ही अमीर–गरीब, ऊँच–नीच, जात–पात, का भेदभाव करने वाला हो; धर्म शास्त्रों का ज्ञाता या ज्ञानी हो; जिस की जीह्वा पर माता सरस्वती का वास हो; विषय विकारों से परे हो; आत्म शक्ति सम्पन्न हो; जीवों का मान करने वाला हो; जो ब्रह्मा, विष्णु और महेश को एक ही परमेश्वर का रुप मानता हो।

पूर्ण महात्मा, साधु या गुरु के लक्षण:-

कुलार्णव तंत्र त्रयोदश उल्लास में, भगवान शंकर, माता पार्वती से, योग दीक्षा के उपयुक्त सामर्थ्यवान गुरु के लक्षण इन शब्दों में कहते हैं –

जिस गुरु की वेशभूषा साधारण व साफ शुद्ध वस्त्रों से सुशोभित हो; जो शरीर से आकर्षक और सर्वगुणसम्पन्न हो; जो देवताओं की तरह प्रिय और प्रसन्न रहने व तत्व को बड़ी सहजता से समझने वाला हो; जो आत्मज्ञान से पूर्ण और अमीर–गरीब का भेद न करने वाला हो; जो धर्मग्रन्थों के अर्थ को सहज से समझता व जानता हो; जिस को लोग आदर व सम्मान दें; जो पास में आने वाले सभी प्रकार के मनुष्यों को बिना भेदभाव के प्रसन्न कर देता हो; जो धर्मशास्त्रों द्वारा कहे गए धार्मिक कर्म की व्यवस्था विधान को जानता हो; जो शास्त्र के अनुकूल और प्रतिकूल विचार में दक्ष हो; जिसकी बुद्धी द्वारा कठिन से कठिन विषय या बात भी आसानी से समझ में आ जाए; जो लोगों का भ्रम, संशय दूर कर सके; ऐसा उत्तम पुरुष ही तत्व ज्ञान की दीक्षा का उपयुक्त गुरु है।

भगवान शंकर योग्य गुरु के बारे में आगे कहते हैं; कि जिस की दृष्टि बाहर रहते हुए भी, लक्ष्य अन्दर की ओर हो; जो भूत, भविश्य और वर्तमान को जानने वाला त्रिकालदर्शी हो; सिद्धियां जिसकी आक्षा में हो; जो कहता हो, वही सिद्ध होता हो; जो कृपा करना जानता हो और दण्ड़ देने में समर्थ हो; अहंकार करने वालों व धूर्तों को जब चाहे अपना सामर्थ्य देकर, वापस ले सकता हो; जो दूसरों को अपनी शक्ति द्वारा ज्ञानबोध और शक्तिसंचार कराता हो; जो हर अवस्था में शान्त रहता हो और दूसरे अन्य जीवों अथवा प्राणियों पर दया और क्षमा करता हो; जिसने अपनी समस्त वासनाओं, जैसे काम, कोध, लोभ, मोह एवं अहंकार को जीत लिया हो अथवा जो जितेन्द्रिय हो; जो कम बोलता हो व अति गम्भीर हो; जो सद्‌गुणों से भूषित व सुशोभित हो; ऐसा उतम पुरुष ही; योग दीक्षा के लिए योग्य गुरु है।

अगर ऐसा उत्तम पुरुष या महात्मा कहीं भी, किसी भी भक्त को मिल जाएं, तो आँखें बन्द करके उसकी शरण में चले जाएं। ऐसा उतम, पूर्ण गुरु ही, आप को बुराईयों से छुटकारा दिलाकर, पाप–मुक्त कर सकता है। दूषित मानसिकता को शुद्ध व निर्मल करके, भवसागर पार करा सकता है। ऐसे महान गुरु को,

शत–शत बार प्रणाम।

योग्य गुरु से दीक्षा लेने के बाद, तन, मन, धन से, समर्पण करके, प्राप्त हुए मंत्र का प्रातः व सांयंकाल के समय, जाप करके, अपने जीवन को सार्थक बनाना है। अगर बुरी वृतियां भी हैं, तो उन्हें छोड़ने का संकल्प करना है, वृतियां अपने आप छूट जाएंगी। गुरु के आशीर्वाद और मंत्र जाप करने के बाद से ही, हमारे दूषित विचार व कुविचार नष्ट होने लग जाएंगे। बुराईयां हम से अपने–आप दूर होती जायेगी। सीधे शब्दों में, हमारे बुरे संस्कार और वृतियां, शनैः–शनैः समाप्त हो जायेगे। हमारे मन, चित से हिन्सा, आलस्य, झूठ, फ़रेब, अहंकार, वासना, मोह, जात–पात और ऊँच–नीच का झूठा आवरण आहिस्ता, आहिस्ता क्षीण होता जायेगा। मन के निर्मल व शुद्ध होते ही, हमारी आत्मा का परमात्मा से मिलाप, स्वयं शुरु हो जायेगा। इस काम के लिए, हमें किसी पंडित, मौलवी, पादरी व ज्ञानी के पास जाने के आवश्यकता नहीं है। हमें किसी अनुष्ठान, यक्ष या पशु बलि की भी आवश्यकता नहीं है। अगर किसी चीज़ की ज़रुरत है, तो वह है, एक योग्य गुरु व अपनी आत्म–शुद्धी की, मन को मैल रहित निर्मल शुद्ध बनाने की।

योग्य गुरु के पास बैठने से, क्या आँखें बंद करने के बाद आप अनुभव करते हैं :–

– आप का मन प्रसन्नचित हो उठा है या आप को आनन्द आ रहा है।

– आप मस्ती से झूम रहे हैं।

– आप को अपने आस पास के वातावरण से किसी फूल, द्रव्य या अगरबती की महक या सुगन्ध आ रही है।

– आप के पेट में गुड़गुड़ाहट या चक्र चलने की आवाज़ आ रही है।

– आप के दिल की धड़कनें तेज़ हो रही हैं या दिल उछलता जान पड़ रहा है।

– आप को कोई नाद या वाद्य यन्त्रों की आवाज़ सुनाई दे रही है।

– आप को किसी के स्पर्श का आभास हो रहा है।

ऊपर लिखी हुई बातों में से, क्या आप कोई सी भी बात अनुभव करते हैं या कर रहे हैं, तो अपने आप को भाग्यवान जानिये। आप का योग्य गुरु से मिलाप हो गया है। आप ऐसे पूज्य गुरु से प्रार्थना करके शिष्य – पद पाने की कोशिश कर सकते हैं। आप अपने को धन्य कर सकते हैं।

अयोग्य गुरु के लक्षण :-

कामाक्षा तंत्र में अयोग्य गुरु के बारे में इस प्रकार कहा गया है: जो क्षय–रोग, चर्म–रोग, फोड़ा–फुंसी और दाद–खाज रोग से पीड़ित है; जो कानों से सुनता नहीं है; जिस की आंखें लाल या बिल्ली की तरह पिंगल या द्रिष्टहीन अथवा अन्धा है; जिस का सर खल्वाट या अंगहीन है; अथवा जिस का कोई शारीरिक अंग अधिक या कम है; जिसकी नाक व मुंह से दुर्गन्ध आती है; बहुत ही छोटे कद का वामन अथवा कुबड़ा है; जिस की काम–वासना प्रबल, अथवा विषय–विकारों में फंसा हुआ है; जो पुरुषत्वहीन है; ऐसे किसी भी शारीरिक दोष या वासनायुक्त अशुभ लक्ष्ण वाला गुरु निन्दित होता है और गुरु बनने योग्य नहीं है।

अयोग्य गुरु के बारे में आगे कहा गया है, कि जो शिखा–सूत्र से रहित, मूर्ख, असभ्य भाषा बोलने वाला; वेद–शास्त्रों के ज्ञान को नहीं जानने वाला; न ही वैदिक मार्ग पर चलने वाला और घर–घर जाकर यजमानवृति से जीवन निर्वाह करने वाला, अथवा वैधिक वृति वाला है (आज कल बहुत से वेषधारी साधू लोगों को दवाई देकर अपनी ओर आकृष्ट करते हैं और बाद में ज्ञान के लिए खुद गुरु भी बन जाते हैं); जो कामुक स्त्री के वश में रहता है; जो बहुत सा खाना खाने वाला है और धूर्त, क्रूर प्रकृति व मिथ्यावादी है; जो गांजा, चर्स, भांग, सल्फा, अफीम, दारु, ब्राउनशूगर, स्मेक आदि मादक पदार्थो का उपयोग करता है; जो दूसरों का अहित करने, पशुवृति वाला डरपोक और रोगों से पीड़ित है; जो कोई कार्य न करना चाहता हो और आलस्य में रहता है; जो भोगी है व दूसरों पर आंखें बन्द कर, भरोसा करके जीवन व्यतीत करता है; जो लोगों को धर्म, मज़हब, रिलिजन और भगवान, खुदा, गाड़ के नाम पर व अच्छे भविश्य का प्रलोभन दिखाकर, धन ऐठता है; जो शिष्यों का हित साधन करने में असमर्थ है; जो भोग–ऐश्वर्य चाहने वाला है; ऐसे गुरु का त्याग करना चाहिये या उसे गुरु नहीं बनाना चाहिये। ऐसे गुरु के प्रति गुरु भावना भी नहीं रखनी चाहिये। ऐसे वृति वाले व्यक्ति को गुरु बनाने से न तो इस जन्म में और न ही दूसरे जन्मों में भला हो सकता है।

कुलार्णव तंत्रमें आगे कहा गया है, कि अगर अक्षानवश किसी ने अज्ञानी या मूढ़ गुरु कर लिया है; तो ऐसे अज्ञानी या मूढ़ गुरु का त्याग करके दूसरे

योग्य गुरु के पास जाने में शिष्य को हिचकिचाहट नहीं करनी चाहिये। अज्ञानी या मूढ़ गुरु त्यागने से शिष्य को गुरु–त्याग दोष नहीं लगता है। एक बात ध्यान में रखनी चाहिये, कि नया गुरु धारण करने से पहले, उसे अच्छी प्रकार परखना चाहिये, कि क्या वह नया गुरु बनने योग्य है या नहीं। उसके पास बैठकर, बातचीत द्वारा पता लगाया जा सकता है, कि क्या वह शास्त्रों का क्षाता, निर्मल बुद्धी वाला, अहंकार रहित, देखने में आलौकिक व आकर्षक, घमंड़ रहित, शान्त प्रिय, दया करने वाला और पास बैठने से आनन्द आ रहा है; जितेन्द्रिय, अति गम्भीर, सिद्ध पुरुष, सदगुणों से भूषित। अगर ऐसी बातें अनुभव कर रहे हैं; तो ऐसे गुरु से दीक्षा ली जा सकती है।

अगर ऐसे दिव्य गुरु ना भी मिले, फिर भी अच्छा गुरु देख परख के, कर सकते हैं। एक बात ध्यान में रखनी चाहिये, कि जिस किसी गुरु से दीक्षा लें। गुरु मंत्र लेने के बाद एक साल के अन्दर – अन्दर शक्तिपात के लक्षण का थोड़ा भी प्रत्यक्ष में अनुभव नहीं होता हो, तो ऐसा गुरु त्याग करके, अन्य अनुभवी गुरु से दीक्षा ग्रहन करनी चाहिये। दूसरे गुरु की शरण जाने पर, पूंव–गुरु, गुरु–माता या गुरु–पिता, गुरु–भ्राता आदि का अनादर न करें। उनका सम्मान करते रहिये।

अगर आप को योग्य गुरु मिलने के बाद, शक्तिपात के लक्ष्ण अनुभव होते हैं, तो जानिये कि आप में, महा–शक्ति कुण्ड़लिनी जागृत हो गई है। अहंकार न करें और न ही अपने आप को बुद्धिमान समझिये। शीतल, शांत और विषय विकारों से रहित बनिये। आप अभ्यास द्वारा सिद्ध पुरुष बन सकते हैं। जय शिव–शक्ति, जय गुरुदेव, जय माता श्री, जय भारत!

–इति–

भक्तियोग

भगवान श्रीकृष्ण श्रीमदभागवत गीता के बारहवें अध्याय में, भक्त के बारे में कहते हैं, "जो पुरुष समस्त प्राणियों में द्वेषभाव से रहित, स्वार्थ रहित, सब का प्रेमी और हेतु रहित दयालु है, तथा ममता और अहंकार से रहित, सुख–दुखों की प्राप्ति से, सम और क्षमावान है; अर्थात् अपराध करने वाले को भी अभय देने वाला है; तथा जो योगी निरन्तर संतुष्ट है; मन–इन्द्रियों सहित शरीर को वश में किये हुए है और मुझे में दृढ़ निश्चयवाला है; वह मुझमें अर्पण किये हुए मन–बुद्धिवाला मेरा भक्त मुझको प्रिय है।"

भगवान श्रीकृष्ण आगे कहते हैं, "जो न कभी हर्षित होता है; न द्वेष, शोक और कामना करता है; तथा जो शुभ – अशुभ सम्पूर्ण कर्मो का त्यागी है; वह भक्तियुक्त पुरुष मुझको प्रिय है।"

भगवान श्रीकृष्ण फिर कहते हैं, जो समस्त क:र्मो को मुझ में समर्पित करके, मुझ सगुणरुप परमेश्वर को भक्तियोग से निरन्तर चिन्तन करते हुए भजते हैं; या मेंरा ध्यान करते हुए उपासना करते हैं; उन मुझ में समाहित चित लगाने वाले प्रेमी भक्तों को मै शीघ्र ही मृत्युरुप संसार सागर से उद्धार करने वाला होता हूँ।"

इस अध्याय के अन्त में, भगवान श्री कृष्ण योगी भक्त के बारे में कहते हैं, जो श्रद्धायुक्त पुरुष मेरे परायण होकर ऊपर कहे हुए, धर्ममय अमृत को निष्काम प्रेमभाव से सेवन करते हैं; वे भक्त मुझे अत्यंत प्रिय है।"

यहां भगवान श्री कृष्ण ऐसे भक्त को, जो द्वेषभाव, स्वार्थ व अहंकार से रहित; मन, चित व इन्द्रियों को वश में किये हुए; सुख और दुख में न सुखी और न दुखी; जो सभी कर्मो का त्यागी है; अर्थात निष्काम व निस्वार्थ कर्म करता है; जो अपने मन, वचन, और वाणी से केवल प्रभू को भजता है या प्रभू का गुणगान करता है; श्रद्धायुक्त पुरुष कहे हुए धर्ममय अमृत को, निष्काम प्रेमभाव से साधन करता है; को अत्यंत प्रिय मानते हैं।

स्वामी विवेकानन्द ने भी मनुष्य का परमेश्वर के प्रति सर्वोच्च प्रेम या ईश्वर की खोज को भक्तियोग कहा है। ईश्वर के लिए शाश्वत, उत्त्कट प्रेम ही भक्ति

है। जब शुद्ध विचारों द्वारा अन्तर्मन में प्रभू प्रेम का प्रवेश हो जाता है, तब भक्ति आत्मिक होती है और मनुष्य प्रभू का प्रिय बन जाता है। इस तरह मनुष्य के लिए मुक्ति का मार्ग प्रशस्त होकर प्रभू से एकाकार हो जाता है।

जहां प्रभू के प्रति असीम प्रेम और बिना स्वार्थ की भक्ति हो; वहां ज्ञान और योग या यू कहिये, कि प्रभू से मिलन, अपने आप हो जाता है। सब सांसारिक बन्धन टूट जाते हैं। भक्त के लिए वासनाओं की उपयोगिता समाप्त हो जाती है। तब भक्त प्रेम–मय होकर प्रभू–मय, ईश्वर–मय हो जाता है।

प्रभू की अनुकम्पा या कृपा पाने के लिए काम, क्रोध, लोभ, मोह एवं अहंकार को, अपने शुद्ध विचारों और अच्छे आचरण द्वारा छोड़कर या छोड़ने का संकल्प करके, प्रभू की शरण में जाकर, भक्ति द्वारा परमपिता परमात्मा की अनुभूति प्राप्त करनी चाहिये। यह तभी समभव होगा, जब अपने, जगदाभिमुखी भावों को अन्तरमुखी मोड़कर, प्रभू प्रेम का विकास करें। तब हमारी आत्मा उस दिव्य पुंज की आलौकिकता से, आनन्द के सागर में गौते लगाती हुई, परम सुख का अनुभव प्राप्त करती है।

पूर्ण भक्त को तरह – तरह की अनुभूतियां होती है। उसे दिव्य नाद, गंध, स्पर्ष, वाद्य – यन्त्रों के स्वर, जैसे बांसरी, तबला, ढ़ोलक, सितार, वीणा, शंख और पानी के झरने की कल--कल करती हुई ध्वनि सुनाई देती है। कभी–कभी, दिव्य पुरुषों, देवताओं, महा--पुरुषों, श्रीभगवानों, अखंडजोत व अपनी आत्मा के दर्शनों से भक्त, योगी को महाआनन्द प्राप्त होता है।

पूर्ण भक्त को अपने कष्टों की कोई चिन्ता ही नहीं रहती। कष्ट का निवारण आलौकिक शक्ति द्वारा, अपने आप हो जाता है। अगर कोई चीज़ साथ रहती है, तो वह आनन्द की अनुभूति। आनन्द ही आनन्द, महा–आनन्द। भगवान व्यास ने भी कहा है कि, प्राणिधान वह भक्ति है, जिसमें योगी पर परमेश्वर का अनुग्रह होता है या कृपा होती है; उस की सारी आकांक्षाएं पूर्ण हो जाती हैं।"

लेन–देन, तेरा–मेरा, अपना–पराया, स्त्री–पुरुष के अन्ध या वासनात्मक प्रेम को, प्रेम नहीं कह सकते हैं। इसे अन्ध आसक्ति कह सकते हैं। आलौकिक या शुद्ध प्रेम में, लेन–देन, स्त्री–पुरुष, तेरा–मेरा या वासनाओं का कोई स्थान नहीं होता। प्रेम ईश्वर से मिलने का एक माध्यम है। जो आगे चलकर भक्ति में परिवर्तित हो जाता है। जिस का आरम्भ प्रभू के गुणगान और गुरु धारण करने

के बाद होता है।

भक्त को यह बात ध्यान में रखनी चाहिये, कि ईश्वर सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, परमकल्याणकारी और गुरुओं के गुरु, महागुरु है। ईश्वर जहां परम–कल्याण करने वाला है, वहां प्रेम स्वरुप भी है। भक्तों के सब कष्ट बिना कहे या बोले दूर कर देते हैं। इस में कोई दो राय नहीं है।

परमेश्वर सगुण भी हैं और निर्गुण भी। भक्त किसी भी रुप में प्रभू की उपासना, आराधना, भक्ति, भजन, कीर्तन, जप और ध्यान कर सकता है। अच्छा होता यदि भक्त, पूर्णगुरु या सामर्थवान गुरु के चरणों में जाकर, प्रभू की शरण हो जाता। गुरु धारण करने से, भक्ति में आई बाधाओं के दूर होते ही, गुरु अपने अनुभवों से भक्त का प्रभू से मिलाप कराता है। ऐसे महान गुरु और भक्त धन्य हैं।

भक्त को अपने मन में यह विचार कभी भी नहीं लाना है, कि वह अधिक समय, प्रभू का भजन, कीर्तन, पाठ या मनन करता है। अब प्रभू प्रसन्न है। जैसा चाहूं या करुं सब ठीक है। अब मुझ से बड़ा भक्त कोई नहीं है। इस प्रकार या ऐसा सोचने से अहंकार आ जाता है। जो ठीक बात नहीं है।

धार्मिक पुस्तकों का अध्ययन करने से बुद्धि का थोड़ा बहुत लाभ तो होता है, पर अन्तरात्मा को कोई लाभ नहीं पहुंचता है। पुस्तकें पढ़कर अपने आप को महा–पंडित, ब्रह्मज्ञानी आदि समझना और इस तरह बिना अनुभव के अहंकार करना उचित नहीं है। श्रीमदभागवत गीता, श्रीमदरामायण या अन्य धार्मिक पुस्तकों को कंठस्थ करके, अपने आप को पूर्णज्ञानी, भगवान के समीप या ईश्वर का प्रिय समझना भी ठीक नहीं है। ऐसा करने से तनिक भी आध्यात्मिक अन्नति नही हो पाती है। यह बात सही नहीं है, कि पुस्तकें पढ़ने से आध्यात्मिक उन्नति होती है।

हम श्रीमदभागवत गीता से, भगवान श्रीकृष्ण और श्रीमदरामायण से, भगवान श्रीराम की बात करें। कई लोग, श्रीकृष्ण के वस्त्रों, गोपियों, धन–सम्पति, व सुख–सुविधा का ज्यादा से ज्यादा गुणगान करते हैं। लेकिन श्रीकृष्ण द्वारा प्रस्तुत ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग की व्याख्या व युद्ध में धर्म और सच्चाई का साथ देने की कोई बात ही नहीं करता है। ऐसे ही श्रीराम के बारे में है। श्रीराम द्वारा प्रस्तुत त्याग, तप, कर्तव्य, अच्छाई व धर्म में आस्था,

छुआ–छूत, छल–कपट व ऊंच–नीच से ऊपर उठकर या भेद न करने की कोई बात ही नहीं करता। क्या हम लोग, एसे अच्छे विचारों को अपनाकर, त्याग व अहिन्सा द्वारा, लालच, छल–कपट, दूसरों का गला काटने, स्त्री–पुरुष धन–दौलत के झगड़ों को समाप्त नहीं कर सकते हैं। उच्च आदर्शों की बातें तो हम करते हैं, लेकिन उसका अनुसरण नहीं करते। रावण को तो कोसते हैं, लेकिन रावण का भगवानशिव के प्रति प्रेम को नहीं अपनाते हैं। हम भगवान शिव व श्रीराम की तरह, मोह–माया व वासनाओं का त्याग भी नहीं कर पाते। क्या हम लोग खालिस बातें ही तो नहीं करते हैं।

क्या, हम उस बीमार की तरह तो नहीं, जो वैध या डाक्टर के पास जाकर, अपनी बीमारी का विवरण देकर, परची पर लिखी बीमारी को दूर करने की दवाई तो बार–बार पढ़ सकते हैं, लेकिन बिना दवाई खाये, बीमारी का इलाज नहीं कर पाते। जब तक हम दवाई नहीं खायेंगे, तब तक बीमारी कैसे दूर हो सकती है, स्वास्थ कैसे सुधार सकते हैं। इसी तरह, जब तक कि हम, धार्मिक पुस्तकों में लिखी बातों का, अपने अन्दर अनुभव व अनुसरण नहीं करते, तब तक आध्यात्मिक भाव कैसे जागृत होकर विकसित होंगे। ज्यादा से ज्यादा बौद्धिक पुस्तकें पढ़ने से किताबी ज्ञान की प्राप्ति तो हो सकती है, लेकिन आध्यात्मिक ज्ञान की नहीं।

प्रभू से मिलने के लिए हमें आध्यात्मिक ज्ञान की आवश्यकता है। आध यात्मिक ज्ञान के लिए हमें भगवान बुद्ध और भगवान महावीर की तरह सालों साल, काम, कोध, लोभ, मोह और अहंकार से छुटकारा पाने के लिए, दैहिक कष्ट भोगने पड़ेंगे। क्योंकि, ऐसी संजीवनी शक्ति पुस्तकों से पढ़कर प्राप्त नहीं की जा सकती है।

शक्ति की प्राप्ति एक आत्मा द्वारा दूसरी आत्मा से ही हो सकती है। हम भले ही सारा जीवन पुस्तकों के अध्ययन पर लगायें; अपने आप को बुद्धिजीवी व बुद्धिमान समझे। पर अन्त में, हम जानेंगे कि हमारी तनिक भी आध्यात्मिक उन्नति या शक्ति प्राप्ति नहीं हो पाई है।

शास्त्रों के जानने वाले कई लोग, पुस्तकी ज्ञान का मिर्च मसाला लगाकर वर्णन करते हैं। वे समझते हैं, जितना ज्यादा मिर्च मसाला लगाया जाये, उतनी ज्यादा वाह! वाही!! भक्तों को मिलेगी। इस तरह वे लोग अपने को महानतम भक्त

समझने लगते हैं। ब्रह्म का अनुभव न होने की वजह से, कभी--कभी, अहंकार भी करने लगते हैं; जो पतन का कारण बन जाता है।

आध्यात्मिक ज्ञान के लिए, जिज्ञासु भक्त को, जिसने सारी वृतियों को छोड़ा है या छोड़ने की कोशिश कर रहा है, को सामर्थवान गुरु की शरण में जाना चाहिये। क्योंकि, मनुष्य के अन्दर सोई हुई शक्तियों को जागृत करने के लिए पूर्ण या सामर्थ गुरु की आवश्यकता होती है। गुरु ऐसा होना चाहिये; जिसके अन्दर असीम शक्तियां हों; या संचार शक्ति विद्यमान हो; जो दूसरों के अन्दर, इस महा--शक्ति को संचारित करने में सक्षम हो। इस तरह गुरु से शिष्य या परमात्मा से आत्मा में, शक्ति का संचार होता है। इसे शक्तिपात भी कहते हैं।

भक्त या शिष्य की पूर्व योग्यता भी होनी चाहिये। काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार से दूर रहना चाहिये। गुरु की तन, मन, धन से सेवा करनी चाहिये। गुरु ऐसा होना चाहिये, कि बिना बताए योग्य शिष्य को, वह सब कुछ दे, जिस की शिष्य को आवश्यकता हो। जब दोनों गुरु और शिष्य असाधारण हों, तभी शिष्य में आध्यात्मिक भाव जागृत होंगे, अथवा या अन्यथा नहीं। ऐसे ही गुरु वास्तव में श्रेष्ठ होते हैं और ऐसे ही शिष्य आदर्श शिष्य कहलाते हैं।

कई बार देखने में आया है, कि किसी के, निकट के सम्बंधी की मृत्यु पर बड़ा सदमा पहुंचता है। उसे यह दुनिया नश्वर व दुखों का घर लगने लगती है। जब तक श्मशान भूमि पर खड़ा है, तब तक मन में अनेक भाव उठते रहते हैं; कि मरा हुआ व्यक्ति बड़ा अमीर था; कमाई गई अथाह धन--दौलत, मान--सम्मान यहीं धरती छोड़कर स्वर्ग सिधार गया है; अपने साथ कुछ भी नहीं ले गया है। सोचते--सोचते, मन दुखी और व्याकुल हो जात है। मन में त्याग और वैराग्य की भावना व अन्य विचार आते रहते हैं। तब मनुष्य या व्यक्ति, किसी गुरु की शरण जाने की सोचता है। लेकिन जैसे ही श्मशान भूमि से मृत सम्बन्धी को अग्नि देकर बाहर निकलता है। तो वह, मन में उठे त्याग और अन्य महान विचारों को भूलकर, फिर संसार के माया--जाल व छल--कपट में लग जाता है।

इस तरह मन में उठे त्याग, वैराग्य और धार्मिक भावुकता व आध्यात्मिक विचारों की भाव--तरंगें नष्ट हो जाती है। जहां पर पहले थे, वहीं के रह जाते हैं। इस तरह दुखीमन की क्षणिक भावुकता को हम धर्म पिपासा समझने की गल्ती कर बैठते हैं। जबकी यह आत्मिक या आध्यात्मिक व्याकुलता

नहीं है; बल्कि मानसिक व्याकुलता है। क्योंकि, हमारे अन्दर आध्यात्म या धर्म को ग्रहण करने की सच्ची पिपासा ही नहीं है।

भक्त या शिष्य के लिए कहा गया है, कि असका निरोग स्वास्थ शरीर और स्वस्थ मस्तिशक हो; गुरु के प्रति मन में प्रेम, आदर, सच्ची श्रद्धा व ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त करने की लगन हो; मन व शरीर शुद्ध, पवित्र और शान्त हो; काम, क्रोध, लोभ, मोह, एवं अहंकार के लिए कोई स्थान न हो या छोड़ने की कोशिश कर रहा हो; अच्छे और बुरे की पहचान हो; बुरे लोगों व काम विकार से दूर भागता हो या रहता हो; मीट, मछली, सिगरेट, शराब, चर्स, गांजा, स्मैक, हैराइन व अन्य मादक पदार्थों से परहेज़ करता हो; कम खाना खाता हो; गरीब–अमीर, छुआ–छूत व ऊंच–नीच का भेद नहीं करता हो; भगवान के नाम पर, धन–दौलत नहीं जोड़ता हो; तन, मन, वचन से शुद्ध हो; कर्मयोगी अथवा बिना फल की इच्छा किए, अपना निस्वार्थ कर्म या कार्य करता हो। ऐसा पूर्ण प्रिय भक्त (शिष्य) मिलने पर गुरु भी धन्य हो जाता है। जय शिव–शक्ति, जय गुरु देव, जय माता श्री, जय भारत।

–इति–

उपासना

अपने देवा–दि–देव, इष्ट–देव, प्रभू, परमेश्वर, वाहेगुरु, शक्ति पुन्ज, निराकार, अखंड़–जोत के चिन्तन, मनन, प्रार्थना, भजन, कीर्तन, जप, ध्यान करने को उपासना कहते हैं। सरल शब्दों में देखा जाए, उपासना का अर्थ ईश्वर के समीप बैठना या जाना है। अर्थात अपने ब्रह्म भावों को अन्तरमुखी करके, अपने आप को परमेश्वर नाम में लीन करके समर्पित करना है।

संसार में जितने भी महान ऋषि, मुनी, साधु, संत, ध्यानी, ज्ञानी, योगी एवम महात्मा हुए है। वे सभी ईश्वर या परमेश्वर के उपासक थे। मनुष्य या भक्त के लिए, प्रभू प्राप्ति का सरल मार्ग, केवल प्रभू की उपासना करना ही है। उपासक को काम, क्रोध, लोभ, मोह एवं अहंकार व अन्य विकारों व वासनाओं से दूर बचे रहना चाहिए। उपासना प्रार्थना, भजन, कीर्तन, जप, ध्यान, मनन, चिन्तन के द्वारा हो सकती है। प्रार्थना का अर्थ है, अपने इष्ट–देव प्रभु परमेश्वर के गुणों का, मन और वाणी से बार–बार, मनन करना है। भक्त अपने मन में जिस का भी विचार व चिन्तन करता है, उसी को वाणी से बोलता है और फिर उसी को कर्म या कार्य द्वारा पूरा करने की कोशिश करता है। फिर अभ्यास द्वारा वह वैसा ही बन जाता है।

उपासना का प्रारम्भ, अक्षर 'अ–उ–म', (ॐ) के ब्रह्मरुप से शुरु होता है। निरंतर चिन्तन, मनन, ध्यान, धारणा, भजन, कीर्तन द्वारा उपासना मनुष्य के जीवन की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि बन कर, भक्त को निर्वाण, समाधी या मुक्ति की राह तक ले जाती है। उपासना में सब से अधिक आवश्यकता है, निस्वार्थ आत्मिक, मानसिक व शारीरिक त्याग और वैराग्य द्वारा भागवत प्रेम व ईश्वरीय अनुभूति प्राप्त करने की। क्योंकि, हम जिनको सब से अधिक चाहते हैं या प्रेम करते हैं; दिन–रात, या हर क्षण, उन्हीं के बारे में सोचते व चिंतन करते रहते हैं। प्रभू परमेश्वर को, यदि हम हृदय से चाहेंगे; तो उनका चिंतन व ध्यान सदैव हमे होता रहेगा। इस तरह प्रभू सिमरण और चिंतन से आनन्द की प्राप्ति होगी।

अपने अन्तः करण, मन व चित्त को शुद्ध करने का सब से बड़ा आकर्षण प्रभू–प्रेम ही है। उपासना के द्वारा भगवत–स्वरुप परम कल्याणकारी परमपिता

परमेश्वर का नाम लेने से, पापमय जीवन सवर्णमय होने लग जाता है। अभ्यास द्वारा आगे चलकर, धर्म या सत्यपथ पर अग्रसर होकर, स्वयं दिव्य–पुन्ज के आलौकिक दिव्य–प्रकाश से, हमारी सारी असुरी वृतियां व विघ्न बाधाएं, दूर होकर, हममें, भक्ति, आत्म–ज्ञान व शान्ति का संचार होने लगता है।

ध्यान करते समय, इन्द्रिय संयम, त्याग, वैराग्य और श्रद्धा रखने के साथ–साथ, काम, क्रोध, लोभ, मोह एवं अहंकार व अन्य दूसरी वृतियों से दूर रहना चाहिये। प्रभू या ईश सिमरण हमें पाप, लालच व अन्य बाधाओं से बचाती है। मन और अनतकरण को शुद्ध व शान्त करके, ईश सिमरण हमें ईश्वर की ओर ले जाती है। ज्ञानी, बुद्धिमान, निर्मल, शान्त और पवित्र बनाने में सहायता करती है। प्रभू सिमरण चित, मन की चंचलता को दूर करती है।

ध्यान, धारणा, चिन्तन, कीर्तन, भजन, प्रार्थना आदि से चित शुद्ध, निर्मल और पवित्र होकर आनन्द को प्राप्त होता है। चंचल मन एकाग्र होने लगता है। बुराईयां दूर भागने लगती हैं; सतोगुण बढ़ता है; मन या चित शान्त हो जाता है। मन के शान्त होते ही मानसिक व शारीरिक रोगों की निवृति हो जाती है; शरीर स्वास्थ हो जाता है; भक्त की सारी असुरी बुराईयां शनै! शनै!! समाप्त होने लगती है और इस तरह सारी असुरी शक्तियां दूर भागने की कोशिश करती है। वृतियों के दूर होते ही, हम में सतोगुण व सात्विक गुण बढ़ते है; प्रसन्नता प्राप्त होती है और इस तरह दुखों व कष्टों का नाश हो जाता है।

उपासना के द्वारा अन्तकरण शुद्ध होकर, शरीर के कण–कण, मन, चित में, उस परा–शक्ति, परतपिता परमेश्वर, निराकार, परम–शिव, देवा–दि–देव, महादेव, शक्ति, शक्ति–पुन्ज, परम–जोत, वाहे–गुरु, ब्रह्म, अखंड–जोत, शिव–शक्ति, आलौकिक पुन्ज, का वास हो जाता है। इस तरह भक्त पर परमेश्वर का अनुग्रह, कृपा होते ही, भक्त परमानन्द, महाआनन्द, समाधि, निर्वाण या मोक्ष को प्राप्त होता है। जय शिव–शक्ति, जय–गुरुदेव, जय–माताश्री, जय–भारत

–इति–

शिव शंकर-शिव की ओर

शिव शब्द अत्यन्त करणप्रिय, मधुर, सरल, शुद्ध, निर्मल, शान्तिप्रद और शक्ति–सम्पन्न है। यह आलौकिक शब्द परमात्मा या महेश्वर का वाचक है। शिव ही शंकर, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, ब्रह्म, वाहे–गुरु, अखंड़–जोत, निराकार, साकार, परम–जोत, शक्ति–पुंज, शिव–शक्ति आदि है। शिव में 'श' आनन्द का द्योतक है और 'कर' करने का द्योतक है। अतएव जो देव, सुखमय, आनन्दमय और आध यात्मय करने वाला है; वही शिव है। सीधे शब्दों में कहा जाएं, भगवान शिव–शंकर आनन्द, कल्याण, सुख, मुक्ति देने वाला एवं मंगल करने वाला आदि देव, परम–ब्रह्म है। जिस किसी मनुष्य या भक्त ने वेदान्त, ज्ञान, मंत्र, तंत्र, भक्ति व योग द्वारा शिव तत्व को जान लिया है। तो उसने सब कुछ पा लिया है। उसके लिए ओर कुछ भी जानना शेष नही रहता। ऐसा श्वि प्रिय भक्त, शिव प्रेम में, शिवमय हो जाता है।

भगवान शिव सगुण भी है और निर्गुण भी; गुणातीत भी है और गुणाध्यक्ष भी; साकार भी है और निराकार भी; अव्यक्त भी है और व्यक्त भी; चर, अचर जीव, जन्तुओं का पालक भी है और संहारक भी; अपने समीप भी है और दूर भी; ब्रह्मा, विष्णु भी है और महेश भी; सर्वव्यापी कल्याण करने वाला, सर्वगुणसम्पन्न, मुक्तिदाता भी है और शक्ति (उमा) के साथ भी; सीधी सी बात है, कि भगवान शिव अर्धनारीश्वर होते हुए भी योगीराज है; भस्माधारी होते हुए भी तीनों लोकों के पालक है।

श्रुति में भगवान शिव के बारे में कहा गया है :– भगवान शिव ईश्वरों के भी परम ईश्वर, महेश्वर है; देवताओं के भी परम देवता, देवेश्वर है; पतियों के भी परम पति, परम पूज्य सर्वेश्वर, भूवनेश है। जिसमें यह विश्व व्याप्त है; जिन के द्वारा यह विश्व है; जो स्वयं यह विश्व है; जो इस विश्व के भी परे है; उन स्वयम्भू शिव की, मैं शरण लेता हूँ। उन्हीं ईशान और वरदाता पूज्यदेव महादेव को जानने से, जीव आध्यात्म व परम शान्ति का अधिकारी होता है।

भक्त, मनुष्य द्वारा देवताओं और भगवानों को निस्वार्थ कर्म और मन, वचन, ध्यान लगाकर पूजने से, सब से पहले भगवान शिव ही जल्दी प्रसन्न होते हैं। वे साधकों और भक्तों को उन्नति के पथ पर अग्रसर कर, मुक्ति की ओर ले

जाते हैं। भगवान शिव को ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग, जप, तप, ध्यान, धारणा, द्वारा पाया जा सकता है। सीधे शब्दों में साधक या भक्त अपनी आत्म–शुद्धी के बाद ही, अपने ही अन्दर, शिव को खोजकर, शिव से एकाकार कर सकता है।

साधक, भक्त अपनी वासनाओं, चितवृतियों को निर्मल, शुद्ध व शान्त करने के लिए, अभ्यास द्वारा, अपने मन को शून्य करके और इन्द्रियों को अन्दर की ओर खींच कर, योग साधना द्वारा (गुरुमंत्र और दीक्षा लेने के बाद) कर सकता है। इस तरह मन को शुद्ध व पवित्र करके और अपने आप को वैराग्य की ओर ले जाकर, निष्काम, निस्वार्थ कर्म करके, कर्मफल की आशा त्यागकर, गरीब बेसहारा अपंगों की सहायता करके, भगवान शिव को पा सकते हैं।

इस लिए भक्त या साधक को चाहिए, कि अपने कल्याण और मोक्ष के लिए यम, नियम, प्राणायम, वेदान्त कथित सदसत विवेकरुप, ब्रह्म–विद्या और ईश्वर उपासना, भजन, कीर्तन, ध्यान व धारणा द्वारा अपनी इन्द्रियों को संयम में रखकर, योग–साधना के अभ्यास से, अपने चित को स्थिर व शान्त करके, अपने भौहों के बीच ध्यान लगाएं। अभ्यास द्वारा मन के स्थिर होते ही, आलौकिक ज्योति या अपने आत्म–प्रकाश के दर्शन होते हैं।

भगवान शिव को वेदों, शास्त्रों व अन्य धर्म ग्रंथों में, रुद्र भी कहा गया है। रुद्र का अर्थ रोना होता है। यानि दुष्टों, पापियों को रुलाने वाला। जहां रुद्र भगवान पापियों को रुलाता है व संहार करता है; वहीं दूसरी ओर दीन दुखियों के दुख से दुखी भी होते हैं; दीन–दुखियों के दुख – दर्द को दूर करने की चेष्टा भी करते हैं।

भगवान शिव को त्रिशूलधारी भी कहा गया है। भगवान शिव दुष्टों, पापियों व अधर्मियों को शूल–पीड़ा भी देते हैं। इस लिए भगवान शिव, त्रिशूलधारी भी कहलाते हैं।

भगवान शिव को त्रिनेत्री या त्रिनयन या तीन आंखों वाला भी कहते हैं। भगवान शिव अपने दोनों नेत्रों द्वारा ब्रह्माड़ में रह रहे, चर – अचर की रक्षा भी करते हैं। लेकिन जब अधर्म, पाप, हिन्सा, धरती को घेर लेती है। भगवान शिव धर्मात्माओं और अच्छे प्राणियों की रक्षा के लिए, अपने तीसरे नेत्र द्वारा, दुष्टों व पापियों का संहार करके नाश करते हैं। भगवान शिव, इस ब्रह्मांड़ के चर, अचर

के भूत, भविश्य और वर्तमान, तीनों कालों की बातों को जानते हैं।

पुराणों में भगवान शिव को विद्या, योग व नृत्य का प्रधान देवता भी कहा गया है। उन्हें विद्यातीर्थ व नटराज के नामों से भी पुकारा जाता है। ज्ञानियों, विद्यार्थियों, योगियों और नृत्य सीखने वालों को भगवान शिव की आराधना, ध्यान व पूजा के लिए विशेष रुप से आदेश दिया गया है।

भगवान शिव, पूर्ण रुप से जगदगुरु है। एक तरफ पाप–हिन्सा, मोह–माया, छल–कपट, झूठ–फरेब, जात–पात, ऊंच–नीच जैसी विकृतियों से युक्त मनुष्य के उत्थान के लिए, कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग द्वारा कल्याण, निर्वाण, मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करते हैं। तो दूसरी ओर पापी, दुष्ट, हिन्सक, क्रूर दुष्टों द्वारा क्रूरता व दुष्टता न छोड़ने पर दण्ड़ भी देते हैं।

भगवान शिव के भक्त, शिव को सदगुरु मानकर, उनकी पूजा, अर्चना, उपासना, ध्यान, धरणा, मंत्र जाप, भजन, कीर्तन व मनन द्वारा शुद्ध मन से याद करते हैं। भगवान शिव अदृश्य होकर, साधकों, भक्तों की दृश्य–भाव से सहायता करके शिवोन्मुख करते हैं। ऐसे परम पूज्य भगवान शिव की आलौकिकता से साधक या भक्त, शिव– प्रेम में, शिवमय हो जाते हैं।

भगवान शिव से मिलाप का सरल उपाय, एक उतम योग्य सामर्थ गुरु धारण करके, उनके शिष्य बनकर, ध्यानयोग, भक्तियोग, साधनयोग या महायोग द्वारा उनकी या गुरु की शरण में जाना है। इस के लिए सब से पहले, अपने आप को पापमुक्त, निर्मल, शुद्ध मन, वासना रहित होकर या इन राक्षसी वृतियों को छोड़ने का संकल्प करके, छोड़ देना चाहिए। अगर आप ऐसा कर पाते हैं। जैसे कि वेदों में कहा गया है, कण–कण मे भगवान। तो आप को भी वासना रहित होने पर, वैसे ही कण–कण में भगवान दिखाई देगा।

शिव–उपासना या शिवोपासना का सरल अर्थ भगवान शिव के समीप बैठना या जाना है। अपने आप को शिव में लीन होना या समर्पित कर देना ही शिव उपासना का चरम स्वरुप है। उपासना शरीर के स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर का दिव्यदेह उत्पन्न करके, की जा सकती है। तब, उपासक और उपासना, दोनों भगवान शिव में लीन होकर, केवल उपास्य स्वरुप ही रह जाता है और भक्त या साधक, शिवमय होकर, महाआनन्द को प्राप्त होता है।

भगवान शिव को भोलानाथ या भोलेभंड़ारी भी कहते हैं। वेद, पुराणों में

बताया गया है, कि कोई भी भक्त, भगवान शिव–शंकर को एक बार प्रणाम करके याद करें; तो भगवान शिव उस भक्त, प्राणी पर अति प्रसन्न होते हैं।

भगवान शिव का भक्त या साधक एक बार ही महादेव शिव को प्रणाम करके अपने आप को पाप मुक्त मानता है। भगवान शिव भी, ऐसे नाम सिमर्ण या उच्चारण करने वाले भक्त के प्रति प्रेमभाव से ऐसे दौड़े चले आते हैं; जैसे गाय अपने बछड़े के पीछे दौड़ती हैं।

जो भक्त या प्रभु प्रेमी, भगवान शिव का, तीन बार महादेव, महादेव, महादेव; इस तरह ईश्वर के आलौकिक नाम का उच्चारण करता है; तो भगवान शिव एक बार भक्त द्वारा शिव नाम लेने पर, उस भक्त को शिवमय कर देते हैं; शेष दो नामों के उच्चारण से, उस प्रभु प्रेमी भक्त का श्रृणी हो जाते हैं।

भगवान शिव–शंकर–भोलेनाथ का परिवार भी बड़ा अदभुत है। जहाँ माता उमा–पार्वती, शक्ति की स्वामिनी, साक्षात अन्नपूर्णा, भवानी, कमलारानी, पत्नी है; वही खुद भोलेनाथ, शरीर पर भस्म लगाये हुए, गले में सांपों की माला पहने, सिर पर चन्द्रमा व गंगा धारण किये हुए, बर्फ की पहाड़ियों पर नंग–धड़ंग ही धूम रहे हैं। अपनी कोई चिंता ही नहीं। पुत्र गणेशजी की आलौकिकता का क्या कहना। उन्हें सिद्धि–दाता, विध्नविनाशक कहा गया है। वीर पुत्र कुमार जी सुब्रमनियम देव–सेनानी है; देवताओं के सेना–नायक। भगवान शिव का निवास–स्थान, हिमालय का सर्वोच्च शिखर कैलाश पर्वत है। ऐसा आलौकिक आकर्षक दिव्य रुप शायद ही किसी अन्य भगवान का हो।

भगवान शिव की पूजा,जाप, मंत्र, ध्यान, पाठ, प्रातः व शाम के समय, शान्त वातावरण में, नियमित समय पर, कम से कम दो धन्टे, ऊनी आसन पर बैठकर, शरीर व चित की वृतियों को रोककर व दूर करके, शुद्ध व स्वच्छ होकर करना चाहिये। खाली भूमि, घास, टाट, लकड़ी पर बैठ कर ध्यान नहीं लगायें। आत्मशुद्धि के लिए, हवादार साफ सुथरे कमरे में, अगरबती या धूप व शुद्ध घी का दिया जलाकर, किसी भी विधि से, पूजा–पाठ, जप–ध्यान करें। कमलासन, योगासन या सुखासन में बैठकर, कमर को सीधा रख कर ही बैठें। इन विधियों के द्वारा, आप का ध्यान स्थिर रहेगा। वासनाओं व अन्य विचारों को मन में आने न दें। अच्छा यही होगा कि आंखें बंद करके ही ध्यान, जाप, पाठ करें। ऐसा करने से एकाग्रता आती है।

वायवीय संहिता में भगवान शिव, भगवान विष्णु से कहते हैं, कि वास्तव में मनुष्य जन्म का ध्येय ही, ज्ञान अर्जित करके मोक्ष की प्राप्ति करना है। मनुष्य यदि प्रतिदिन प्रातः व सांयकाल शुद्ध होकर, क्रिया व योग में लगा रहे; तो भक्त/मनुष्य को, ज्ञान व ईश्वर की प्राप्ति यथा समय हो जाती है।

अपने चित, बुद्धि और शरीर की वृतियों या वासनाओ के रोकने को योग कहते हैं। बिना ज्ञान के मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती है। इस लिए ज्ञान क्या है। यह जानना भक्त या मनुष्य के लिए बहुत आवश्यक है। पाशुपत महायोग के अनुसार जीव उसके बंधे हुए बंधन रुपी पाश और उन पाशों से मुक्त होने के उपाय; इन तीनों पशु, पाश, और पति के जानने को ज्ञान कहते हैं। घृणा, लज्जा, भय, शोक, कुल, शील, जाति व जुगुप्सा–ये जीव को बांधे हुए आठ पाश है। इनसे जकड़ा हुआ जीव, पशु कहलाता है। अगर इन पाशों से जीव मुक्त हो जाए या मुक्त होने की कोशिश करें। तो जीव स्वयं ही शिव हो जाता है।

वायवीय संहिता में आगे कहा गया है, कि ईश्वर, परमेश्वर की आलौकिकता व शक्तियों का अनुभव, पाँच तत्वों की शुद्धि के बाद ही होता हैं। जीव की सब से पहले, निवृती द्वारा रुद्र तत्व की पर्यन्त शुद्धि होती है। शुद्धि या आत्म शुद्धि, निवृति धारण करने से हो जाती है। आत्म–तत्व का तेज, वैराग्य की प्रभा के रुप में चमकने लगती है। तत्वों की शुद्धि के बाद ईश्वरीय शक्तियों का अनुभव भक्त या साधक को हो जाता है।

कुलार्णव तंत्र में, भगवान शंकर कहते हैं :–

शिव कल्याण मार्ग से दीक्षित नहीं होने से, साधक का ज्ञान, ध्यान, योग, जप, तप, भक्ति, कर्म, धर्म कुछ भी नहीं फलता है। इस लिए यदि मंगल चाहते हो, तो तुम्हें दीक्षित होना ही पड़ेगा। दीक्षा भी बिना गुरु, आचार्य के नहीं हो सकती है। अतः दीक्षा के लिए तुम्हें गुरु के पास जाना ही होगा। दीक्षा न लेने वाले प्राणी या मनुष्य को, न तो किसी धर्म–कर्म की सिद्धि होती है और न ही मोक्ष ही होता है। इस लिए प्रयत्न करके, सामर्थवान गुरु से दीक्षित होना आवश्यक है।

कुछ भक्त लोग भगवान शिव–शंकर को गांजा, चर्स पीने वाला बताते हैं; जो ठीक और सच नहीं है। अगर भगवान शिव–शंकर गांजा, चर्स जैसे मादक द्रव्य पीते होते; तो वे भगवान कैसे हो सकते हैं। यह ज़रुर देखा गया है, कि

भगवान शिव–शंकर की अनुकम्पा व कृपा से, उनके भक्तों को बिना गांजा, चर्स पिये, गांजा, चर्स जैसी सुगन्ध और नशे का आभास होता है या अनुभव करते हैं।

विश्व के अनेक देशों में, भगवान शिव–शंकर की पूजा–अर्चना होती है। भगवान शिव–शंकर को हज़ारों नामों से जाना व पूजा जाता है। अनेक नामों में से कुछ नाम इस तरह से हैं :– महेश्वर, महेश, भोले–शंकर, शिव–शंकर, महा–शंकर, भोला–शंकर, सदाशिव, महाशिव, देवादेव, महादेव, आदिदेव, रुद्रदेव, नटराज, नागराज, नागनाथ, भूतनाथ, वैद्यनाथ, कमलनाथ, बद्रीनाथ, सतीनाथ, सोमनाथ, काशीनाथ, काशीविश्वनाथ, भोलेनाथ, तुंगनाथ, रुद्रनाथ, मुक्तिनाथ, पशुपतिनाथ, पार्वतीनाथ, दीनानाथ, विश्वनाथ, जगरनाथ, जगतनाथ, केदारनाथ, सतीनाथ, गरुडेश, धर्मेश, सर्वेश, रवेश, पत्रीश, हिरण्यगणेश, सिद्धेश्वर, अजेश्वर, पार्वतीश्वर, भूवनेश्वर, भूतेश्वर, सोमेश्वर, देवेश्वर, वृषभेश्वर, जटेश्वर, अमरेश्वर, नाथेश्वर, स्थानेश्वर, रुद्रेश्वर, कमलेश्वर, वीरेश्वर, जगतेश्वर, मध्यामेश्वर, गिरिशनेश्वर, जगदीश्वर, लिंगेश्वर, नागेश्वर, विश्वेश्वर, भीमेश्वर, महाकालेश्वर, रामेश्वर, त्रम्बकेश्वर, गिरिवेश्वर, मदीश्वर, नर्मदेश्वर, अन्धकेश्वर, कामेश्वर, पातालेश्वर, भूतेश्वर, विश्वेश्वर, अविमुक्तेश्वर, केदारेश्वर, कमिलेश्वर, योगेश्वर, अलीश्वर, नन्दिकेश्वर, सर्वेश्वर, महाकाल, रुद्र, आशुतोष, मृत्युंजय, नीलकण्ठ, औड़रदानी, शर्व, ईशान, उग्र, त्रिपुरारी, त्रिशूलधारी आदि।

भारत के कोने कोने में, तथा विश्व के अनेक देशों में, भगवान शिव–शंकर के मंदिर या तो खंड़ित हो चुके हैं या उन में आज भी पूजा होती है। जय शिव – शक्ति, जय – गुरु देव, जय – माताश्री, जय भारत।

– इति –

वैराग्य

घर परिवार से सम्बन्ध विच्छेद करना या घर से बाल बच्चों या बूढ़े माता पिता या आश्रितों को भगवान के नाम पर छोड़कर भाग जाना या किसी निकट के सम्बन्धी की मृत्यु पर दुखी होकर घर से चले जाना या कोई कार्य या कर्म न करने को आमतोर पर लोग वैराग्य समझते हैं। अगर इसी को वैराग्य कहते हैं, तो ऐसी बात नहीं है। घर छोड़ देना या त्याग करना या कार्य न करना या घर से भाग जाना, वैराग्य नहीं है। बल्कि, वैराग्य बिना घर परिवार छोड़े; बिना स्वार्थ, मोह–माया, छल–कपट, जूठ–फरेब, आसक्ति, वासना और अन्य विकारों से रहित होकर, कार्य या कर्म, बिना फल की इच्छा व बाल बच्चों, माता पिता व आश्रितों का पालन पोषण, घर में रहकर, बिना अपने आप को सांसारिक आकर्षणों में फंसा कर हो सकता है।

किसी भी मंहगे या सस्ते औढ़ने, पहनने, रखने या स्वादिष्ट खाने पीने की वस्तुओं को तो छोड़ दिया है। लेकिन उन वस्तुओं की याद, चित्त या मन के किसी कोने में, किसी न किसी तरह बनी रहती है। क्योंकि, मन उन वस्तुओं को छोड़ने को तैयार ही नहीं हुआ है या मन, चित्त का शून्य इतना प्रबल नहीं हुआ है, कि उन वस्तुओं की याद या इच्छा ही न रहे। बार–बार छोड़ने का संकल्प करने के बाद भी, मन में थोड़ी बहुत इच्छा रहती है।

अगर ऐसा है, तो इसे वैराग्य नहीं कह सकते। क्योंकि, वस्तुओं या वस्तु का रागात्मक चिन्तन, मन से हटा नहीं है या सांसारिक वस्तुओं के प्रति आकर्षण समाप्त नहीं हुआ है। जब तक रागात्मक चिन्तन या आकर्षण मन से हट नहीं जाता, तब तक वैराग्य नहीं हो सकता है। वैराग्य के लिए आसक्ति, द्वेष, विषय–विकारों या वासनाओं, इन्द्रिय सुखों का, शारीरिक व मानसिक त्याग होता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार नहीं रहता। वस्तुतः चित में सभी प्रकार की सांसारिक अभिलाषाओं के न रहने को वैराग्य कहते हैं या सब सुखों के त्याग होने पर ही वैराग्य हो सकता है। वैराग्य मन की उतम स्थिति है, जो सांसारिक आकर्षणों से मोहित नहीं होता।

अब प्रश्न यह है कि वैराग्य कैसे हो सकता है। दूषित वातावरण, पापमय जीवन और कुविचारों से मनुष्य को कैसे बचाया जा सकता है। इस के लिए प्राणी या मनुष्य को अपने अन्दर झांकना है। अपने विवेक से, किये हुए कार्यो

का विश्लेषण या विवेचन करना है। अब तक कितने ऐसे कार्य किएं है, जिन का मन पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा है। समय–समय पर, अपने अन्दर के विषय विकारों पर घ्यान केन्द्रित करना है, कि क्या ठीक है और क्या अनुचित है बार–बार सोचना है, कि यदि अपने बारे में अच्छा सोचा है, तो दूसरों के बारे में भी अच्छा ही सोचें। इसे मन शुद्ध होकर, अच्छे संस्कारों की और ले जाती है। इस तरह कुविचार क्षीण हो जाते हैं।

मनुष्य का मन बड़ा चंचल होता है। इस में निरन्तर विचार कुविचार आते रहते हैं। कुविचारों से चित्त मलिन हो जाता है और इस तरह, काम, क्रोध, लोभ मोह एवं अहंकार की वृद्धि हो जाती है, जो पतन का कारण बन जाता है। मनुष्य दुखी होकर कष्ट भोगता है। राजस–तामस, खान–पान से भी, राजस–तामस विचार अपने अन्दर आने लगते हैं, जो मन में पनप रहे विकारों की बढ़ोतरी करते हैं। इस लिए खान–पान की राजस–तामस वस्तुओं को छोड़ना है। अपने अन्दर के विषय–विकारों और मन की चंचलता पर अंकुश लगाने की आवश्यकता है प्रभू चिन्तन आत्मिक होनी चाहिये, दिखावा नहीं होना चाहिये। निरन्तर प्रभु चिन्तन से, अन्दर के विकारों व वृतियों के नष्ट होते ही, अपने अन्दर वैराग्य की भावना प्रबल हो जाती है। वैराग्य द्वारा पराभक्ति के क्षेत्र में प्रवेश होकर, आनन्द को प्राप्त होते हैं, जो मनुष्य के जीवन का सार है।

भगवान श्रीकृष्ण, श्रीमदभागवत गीता के दूसरे अध्याय में, वैराग्य के बारे में, श्री अर्जुन से कहते हैं :–

"यदा ते मोह कलिलं बुद्धिर्व्यतितरिण्यति।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च।।"

अर्थ :– जब तेरी बुद्धि मोहरुप दल–दल को भलिभांति पार कर जायेगी, उस समय तू सुनने योग्य और सुने हुए, सभी विषयों या भोगों से वैराग्य को प्राप्त हो जायेगा। अर्थात वे विषय तुझे निरर्थक प्रतीत होंगे।

भगवान श्रीकृष्ण जी, बिना स्वार्थ के कर्म करने का अधिकार, कार्यों के फलों की इच्छा का त्याग, सिद्धी और असिद्धी में सम होकर कार्यों को करना; मोह, माया व कामना के अभाव का कहते हैं।

इस तरह मनुष्य कर्मो के फलों का त्याग करके व काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार को छोड़कर, लोक–परलोक के समस्त क्षणिक पदार्थो से अलग या विरक्त होकर, वैराग्य की स्वाभाविक स्थिती में पहुंच जाता है या वैराग्य को प्राप्त हो जाता है। तब उसे सांसारिक विषय–विकार निरर्थक लगने लगते हैं।

सब से पहले वैराग्य प्राप्त करने के लिए, मन में त्याग की भावना लानी है। त्याग कर्मयोग से हो सकता है। यानेकि, कार्य या कर्म, बिना किसी स्वार्थ या फल की इच्छा के, शारीरिक लाभ मानसिक व आर्थिक लाभ के करें। फल की प्राप्ति ईश्वर पर छोड़ें। प्रभू परमेश्वर सर्वशक्तिमान है। हर जीव, प्राणी व ब्रह्मांड के कण – कण में वास करते हैं। प्रभू सब कुछ देखते, सुनते व जानते हैं। मनुष्य को अपने मन, वाणी और नेत्रों पर भी नियंत्रण रखना है। मन को यह भावना देनी है, कि मनुष्य ईश्वर द्वारा धरती पर भेजा गया ईश्वर पुत्र है। जो भी अच्छा कार्य मनुष्य द्वारा हो रहा है। वह सब ईश्वर के पूज्य नाम को समर्पित होकर करें। ऐसा करने से मनुष्य के अन्दर अभिमान नहीं आ जायेगा। क्योंकि, अभिमान और त्याग, वैराग्य के दुश्मन है।

वैराग्य प्राप्त होने के लिए, मन की शान्ति या मन का शान्त होना अतिआवश्यक है। क्योंकि, मन अशान्त होने से या चिन्ता होने पर, शारीरिक व मानसिक कष्ट होता है। जिसे ध्यान, साधन, योग या प्राणायाम ठीक से हो नहीं पाता है।

वैराग्य के लिए, मन में क्षमभाव लाना बहुत आवश्यक है। अपराध करने वाले को क्षमा करके, किसी भी प्रकार का दण्ड़ देने या दिलाने या बदला लेने की इच्छा न रखें। अपराध करने वाले के प्रति क्रोध न करें या अपशब्द भी न कहें। क्रोध करने से अपराधी के प्रति घृणा के भाव जागृत होकर, मन मलिन हो जाता है। मन में प्रतिहिन्सा जागृत होकर, मुख व शरीर की आकृति बिगड़ जाती है। बुद्धि मारी जाती है। कर्तव्य विवेक नहीं रहता। अच्छे और बुरे की पहचान नहीं रहती। इस तरह क्रोध व घृण करना ठीक बात नहीं है।

भगवान श्रीकृष्ण, अर्जुन से क्रोध के बारे में, विस्तार से समझाते हुए, दूसरे अध्याय में कहते हैं :–

"कोधाद्र्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभमः।
स्मृतिभ्ंशाद्रबुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।।६३।।"

अर्थ :– कोध से मुढ़भाव या सम्मोह उत्पन्न हो जाता है, स्मृति भ्रष्ट हो जाने से, विवेक, बुद्धि अर्थात ज्ञान शक्ति का नाश हो जाता है और बुद्धि के नष्ट हो जाने पर, मनुष्य अपनी स्थिति से गिर जाता है; अर्थात पुराषार्थ के अयोग्य हो जाता है।

कोध करने से मनुष्य के अन्तःकरण में, मूढ़भाव की वृद्धि होकर स्मरणशक्ति भ्रमित हो जाती है। क्या ठीक है; क्या ठीक नहीं है; क्या करना है और क्या नहीं करना ; इन बातों पर विवेक ठीक तरह से कार्य नहीं करता। इस तरह स्मृति

के छिन्न–भिन्न होने से, बुद्धि नष्ट हो जाती है। बुद्धि के नष्ट होने से, स्वभाव व व्यवहार में कटुता, कठोरता, कायरता, हिन्सा, प्रतिहिन्सा, घृणा, दीनता, जड़ता और मूढ़ता आदि दोष आ जाते हैं। फिर ऐसी स्थिति में पहुंचे हुए मनुष्य का पतन हो जाता है।

वैराग्य का सब से प्रबल शत्रु अहंकार और आलस्य है। क्योंकि, अहंकार के समय, मनुष्य या प्राणी अपने आप को सुखों को भोगने वाला, सर्वगुणसम्पन्न सिद्ध, सब से ज्यादा बुद्धिमान, बलशाली; अपने बल के सामने दूसरों को तुच्छ जानने व धमकाने और मारपीट करने वाला समझता है। ऐसी असुरी प्रकृतिवाला मनुष्य दूसरों में दोष देखकर, उनकी निन्दा करके, कष्ट पहुंचाने की कोशिश करता है। कुविचारों से ग्रस्त ऐसे प्राणी का मानसिक पतन के साथ–साथ शारीरिक पतन भी हो जाता है। पतन होते ही , शक्तिहीन व कान्तिहीन होकर किये गए पापकर्मों का फल भोगने के लिए बहुत दुख पाता है। जो दुख व कष्ट कई जन्मों तक पीछा या साथ ही नहीं छोड़ता है। क्यों न ऐसी मानसिक विकृति या अहंकार और क्रोध, लालच, छल, कपट, हिन्सा, आलस्य को जितनी जल्दी हो सके, छोड़कर, किये गए पापों का प्रायश्चित करके या यू कहिए, सब बुराईयों का त्याग कर, ईश्वर से मिलाप के लिए, वैराग्य की ओर एक कदम बढ़ाए।

भगवान श्री कृष्ण श्रीमदभागवत गीता के बारहवें अध्याय में समभावयुक्त मनुष्य के बारे में कहते हैं :– जो न हर्षित होता है; न द्वेष करता है; न शोक करता है और न कामना ही करता है; तथा जो शुभ अशुभ समस्त कर्मों का त्यागी है; वह भक्तिमान मनुष्य मुझे प्रिय है।

जो निन्दा और स्तुति को समान माननेवाला, मौनी, मननशील, किसी प्रकार से शरीर का निर्वाह होने से सदा ही सन्तुष्ट है; ममता और आसक्ति से रहित है; वह स्थिर बुद्धिवाला भक्तिमान पुरुष मुझे प्रिय है।

भगवान श्री कृष्ण सम्भावयुक्त, वैराग्यी पुरुष या मनुष्य के बारे में कहते हैं कि जो मनुष्य छल–कपट, हिन्सा – प्रतिहिन्सा, शुभ–आशुभ, लाभ–हानी, मान–सम्मान, ममता–आसक्ति, कर्म–आलस्य, हर्ष–द्वेष, निन्दा–स्तुति, पाप–पुण्य में सम है; अर्थात शरीर व परिवार का निर्वाह व पालन–पोषण, बिना लालच के करता है और सन्तुष्ट है; ऐसा स्थिर बुद्धिवाला बुद्धिमान पुरुष या मनुष्य मुझे बहुत प्रिय है।

जय शिव – शक्ति, जय – गुरुदेव, जय – माताश्री, जय – भारत

– इति –

योग आसन से महायोग तक

भारतीय ऋषियों, मुनियों, योगियों और साधकों ने अपने अथक प्रयास व अनुभव और ईश्वर या शिव की अनुकम्पा व कृपा से, योग आसनों को धरती पर संसारी जीव या मनुष्य के उत्थान के लिए अवतरित किया; ताकि मोहमाया, छल–कपट, झूठफरेब और बीमार देह से पीड़ित मानव, इन आसनों के प्रयोग से तामसिक व मानसिक विकारों को दूर कर और स्वास्थ लाभ करके, अपने आप को निरोग रख सकें।

इन आसनों के करने से, शरीर के प्रत्येक भाग से दूषित द्रव्य व मल के विसर्जन में आसानी होती है। दूषित द्रव्य व मल के बाहर निकलते ही, शरीर की बीमारियां दूर होकर, शरीर में स्फूर्ति व पुष्टि आती है। इस तरह यौवन स्थिर हो जाता है। नियमित आसनों के करने से, अशुद्ध रक्त, शुद्ध होकर, शरीर के प्रत्येक अंग का पोषण करती है। त्वचा को नर्म बनाकर, शरीर के सौंदर्य को बढ़ाती है; चेतन नाड़ियां प्रबल होकर, मानसिक एकाग्रता को दृढ़ व स्थिर करती हैं; मन में सत्वगुणी विचारों की वृद्धि होती है; रजोगुण व तमोगुण विचार कम हो जाते हैं। इस तरह अच्छे विचारों के आते ही मन, चित, निर्मल और शुद्ध होकर शान्त हो जाता है।

साधकों, भक्तों व आम प्राणियों, मनुष्यों के लिए, कुछ मुख्य उपयोगी आसन इस तरह से हैं। इन आसनों के करने से, जहां प्राणियों का स्वास्थ लाभ होगा; वहीं दूसरी ओर साधकों, भक्तों का ध्यान स्थिर होने में व सिद्धियां प्राप्त करने से सहायता मिलेगी।

मुख्य आसन :– सिद्धासन, पदमासन, सिंहासन, शीर्षासन, शिरासन, गरुड़ासन, पश्चिमोतमानासन, व्रजासन, शवासन और प्राणायाम आदि।

आसनों पर बैठने से पहले यह ध्यान रखें, कि आसन स्वच्छ जगह पर, किसी मोटे ऊनी वस्त्र या कम्बल का ही हो। एक आसन करने के बाद, थोड़ा विश्राम करके ही अन्य या दूसरे आसन करें।

सिद्धासन

यह आसन कमर को सीधा रखते हुए, चौकटी मारकर या बैठ कर किया जाता है। इस आसन में, प्राणायाम द्वारा सांस रोकना पड़ता है। इस आसन के करने से, पेट तथा रीढ़ की हड्डी सम्बन्धी रोग, शनैः शनैः दूर हो जाते हैं। यह आसन मानसिक व्याधियों को दूर करके स्मरण शक्ति को तीव्र व ब्रह्मचार्य को स्थिर करता है। शूरु–शुरु में आसन कुछ मिन्ट किया जाता है। शनैः शनैः समय सीमा बढ़ाई जा सकती है। इस आसन को करने से सिद्धि प्राप्त होती है।

पदमासन

यह आसन बैठ कर, कमर को सीधे रखते हुए, दायां पांव बाई जांघ पर व बायां पांव दार्यी जांघ पर रख कर और दायां हाथ दायें घुटने पर व बायां हाथ बायें घुटने पर रख कर किया जाता है। साधक की दृष्टि, नासांग्र या भ्रू–मध्य पर स्थिर होनी चाहिये। आसन के करने से ब्रह्मचार्य में वृद्धि और मानसिक शक्ति का विकास होता है। इस आसन की सिद्धि से, कुण्डलिनी शक्ति जागृत होती है।

सिंहासन

इस आसन में दाएं पांव की एड़ी, बाई ओर व बाएं पांव की एड़ी दाएं ओर अण्डकोषों के नीचे रखकर बैठना चाहिए। हाथों की हथेलियों को फैलाकर, घुटनों पर टिका रखें। कमर को सीधा रखते हुए, मुंह को पूर्ण रुप से खुला रख कर, जीभ को पूरा बाहर निकालें। दृष्टि को नासिका के अग्रभाग पर स्थिर रखें। इस आसन के करने से घुटनों, एड़ियों व मूत्र सम्बन्धी रोग दूर हो जाते हैं, इस आसन के करने से स्मरण शक्ति की वृद्धि होती है। शरु में आसन कुछ मिन्टों का कर ले। आहिस्ता – आहिस्ता समय सीमा बढ़ाई जा सकती है।

शीर्षासन

इस आसन को सिर के बल, खड़ा रहने से किया जाता है। सिर के नीचे धरती पर चार या छह अंगुल मोटा गदेले का नर्म आसन रखा जा सकता है;

ताकि आसन पर सिर रखने से या के बाद मस्तक को कोई कष्ट न हो। आसन पर सिर रखते समय, अपने दोनों हाथों से, सिर को पिछली तरफ से पकड़ कर रखें। फिर अपनी दोनों टांगें व पांवों को दीवार के सहारे सीधा खड़ा करें। अभ्यास के बाद, सहारे की आवश्यकता नहीं रहती है। इस आसन को शुरु–शुरु में कुछ सैकेन्ड से ज्यादा न करें। दस बारह दिन के बाद, थोड़ा–थोड़ा समय बढ़ाया जा सकता है। इस आसन के करने से, स्वपनदोष नहीं होता है व शारीरिक कमज़ोरी दूर होती है। आँखों का प्रकाश तेज़ होता है व आँखों व मस्तिष्क के सारे रोग दूर होकर, सफेद बाल काले हो जाते हैं।

शिरासन

दोनों पावों को धरती पर सीधा रख कर बैठ जाएं। अब बाएं पांव को मोड़कर, एड़ी को अण्डकोष के पास, जांघ से सटा कर रखें। दोनों हाथों की अंगुलियों को कैंची बनाकर दाएं पांव के पंजे को, अच्छी तरह पकड़ कर रखें। अपने सिर को धीरे–धीरे दायीं टांग के घुटने पर रखने का प्रयत्न करें। शुरु–शुरु में, ऐसा करने में कष्ट होगा। लेकिन शनैः शनैः अभ्यास द्वारा आसन लगाना आसान हो जायेगा। फिर दाएं पांव को मोड़कर व एड़ी को अण्डकोष के पास, जांघ से सटाकर रखें। दोनों हाथों की अंगुलियों को ऊपर दिखाए गए, विधि से फिर दोहराए। शुरु–शुरु में आसन तीन चार मिन्टों का किया जा सकता है। आहिस्ता–आहिस्ता, समय सीमा बढ़ाई जा सकती है। इस आसन के करने से उदर, गुदा सम्बन्धी व्याधियां व विकार दूर हो जाते हैं। इस आसन से, मेरुदण्ड में लचीलापन और दृढ़ता आकर, कमर के स्नायु सुदृढ़ होते हैं।

गरुड़ासन

इस आसन को करने के लिए, सब से पहले दाएं पैर पर खड़ा रहें। फिर बांए पैर व टांग को आगे ले जाकर दाएं पैर व टांग से लपेट लें। इसी तरह बाएं हाथ व बाजू को दाएं हाथ व बाजू से लपेट कर, मुंह के सामने स्थिर रखें। इस तरह कुछ मिन्ट रहने के बाद स्थिति बदल सकते हैं। शुरु – शुरु में ,आसन ज्यादा समय न करें। इस आसन के करने से हाथ, पांवों, घुटनों व जोड़ों का दर्द या तो कम हो जाता है या पूरी तरह से ठीक होता है। यह आसन एकाग्रता को बढ़ाता है।

पश्चिमोतमानासन

इस आसन को करने के लिए, दोनों टांगों व पांवों को सीधे रखकर, धरती से सटा कर बैठ जाएं। अब दोनों दाएं और बाएं हाथों की अंगुलियों से दाएं और बाएं पांवों के अंगूठों को पकड़ने की कोशिश करके सिर को घुटनों पर रखने की चेष्टा करें। शुरु–शुरु में, आसन को करने में कष्ट होगा। लेकिन अभ्यास होने पर अच्छा लगेगा। इस आसन के करने से रीढ़ की हड्डी लचीली बनती है। उदर और मुदा के विकार दूर हो जाते हैं। स्वपनदोष दूर होकर, शारीरिक शक्ति में वृद्धि होती है। शरीर में चुस्ती, फुर्तीलापन व उत्साह आता है और शक्ति सम्पन्न बनता है। आसन सिद्ध होने पर, कुण्डलिनी शक्ति जागृत होती है।

वज्रासन

इस आसन को करने के लिए, अपने दोनों पैरों के तल्वों को गुदा के दोनों तरफ सटाकर, घुटनों के बल बैठ जाएं। पांव की अंगुलियों का ऊपर वाला भाग धरती को स्पर्श करें। फिर इसी दशा में, पीठ के बल धरती पर लेट जाएं। अपने दोनों हाथों की अंगुलियों को, एक दूसरे से सटाकर सिर के पिछले भाग के साथ धरती से सटाकर रखें। थुड़ी को भी कण्ठमूल से लगा कर रखें। यह आसन कुछ मिन्ट किया जा सकता है। कुछ दिन बाद, थोड़ी–थोड़ी समय सीमा बढ़ाई जा सकती है। इस आसन के करने से, पांव, घुटनों, पेट व हाथ सम्बंधी रोग, दर्द व किसी भी प्रकार का कष्ट दूर हो जाते हैं।

शवासन

इस आसन को करने से पहले, कोई मोटा वस्त्र, कम्बल समतल जगह पर बिछा कर रखें। अपने मुंह और पेट को आकाश की ओर करके लेट जाएं। यह आसन अन्य आसनों के अन्त में किया जाता है। इस आसन को करने से शरीर को पूर्ण विश्राम मिलता है और थकावट दूर हो जाती है। शरीर के प्रत्येक भाग को शुद्ध रक्त मिलता है। सम्पूर्ण नाड़ियों का पोषण करके मानसिक शक्ति का विकास होता है। मन शान्त होकर स्थिर हो जाता है।

प्राणायाम

महर्षि पतंजली के अनुसार, श्वास–प्रश्वास की गति विच्छेद का नाम प्राणायाम है। प्राणायाम के तीन भाग हैं। पहला रेचक, दूसरा पूरक, और तीसरा कुम्भक है। श्वास बाहर निकालने को रेचक, श्वास अन्दर खींचने को पूरक और श्वास अन्दर शरीर में रोक लेने को कुम्भक कहते हैं। पूरक करने से प्राण का हवन, रेचक करने से अप्राण का हवन, तथा कुम्भक करने से, प्राण अप्राण को मिलाने से प्राणायाम परायण होना कहलाता है। प्राणायाम का अभ्यास करने से, जब प्राण–अप्राण मिल जाते हैं या कुम्भक हो जाता है, तब मूलाधार में चित या मन द्वारा ध्यान करने से कुण्डलिनी शक्ति जागृत हो जाती है। जागृत कुण्डलिनी, साधक या योगी के मनोरथ पूर्ण करती हुई सिद्धियाँ प्रदान करती है।

प्राणायाम की विधि :– प्राणायाम करने का स्थान शुद्ध, साफ, एकान्त, हवादार घर का कमरा या कोई अन्य एकान्त साफ सुथरी जगह होनी चाहिए। प्राणायाम प्रातः या सांयकाल खाली पेट किया जा सकता है। प्राणायाम करते समय प्रसन्न, विषय विकारों से रहित व पवित्र रहने की कोशिश करें। प्राणायाम, पूर्व की तरह मुंह करके, सिद्धासन या पदमासन में, एकान्त जगह में आसन पर बैठ कर, ईश्वर, गुरु का नाम लेकर शुरु करें। मन में किसी प्रकार की चिन्ता न रखें। अभ्यास द्वारा प्राणायाम, प्राण–अप्राण के मिल जाने से सिद्ध हो जाता है।

इन आसनों के करने से, जहां शरीर की विकृतियां दूर होती है, बल की वृद्धि होती है; तो दूसरी ओर यदि मनुष्य चाहे, तो अपने मलिन मन को, जगदाभिमुखी भावों से मोड़कर, अन्तर्मुखी करके, प्रभू प्रेम का विकास करके, ईश्वर से एकाकार भी कर सकता है। इस तरह शारीरिक शक्ति के साथ–साथ, आत्मिक शक्ति का भी अनुभव होता हैं। बस प्रभल इच्छा–शक्ति की आवश्यकता है।

सालों साल के प्रयास द्वारा इन आसनों के करने पर, आत्मिक शक्ति का विकास होता है। तब प्राणवायु के वेग से मूलाधार का द्वार खुल जाता है। जहां सोई हुई कुण्डलिनी शक्ति जागृत होकर सहस्त्रार में जाकर, साधक, भक्त के मनोरथ पूर्णकरती हुई समाधि का महा–आनन्द प्रदान करती है।

मन प्रकृति की सीमा से कुछ आगे चल कर विचार शून्य हो जाता है। तब प्रथम महा–आनन्द की शब्द ध्वनि सुनकर, मन व आत्मा प्रसन्नचित व प्रफुलित होने लगती है। इस तरह भाग्यवान साधक या योगी के कर्णकपाट खुल जाते हैं। फिर अभ्यास द्वारा साधन की समय सीमा बढ़ाकर अन्य अनुभव प्राप्त होते हैं।

कुण्डलिनी शक्ति, जहां अपने अथक सालों साल के प्रयास द्वारा जागृत होती है। वहीं दूसरी ओर, शक्ति के सामर्थ्य गुरु द्वारा भी कुण्डलिनी जागृत होती है। जो कुछ क्षणों से लेकर एक साल तक जागृत होती है। कुण्डलिनी जागृति, गुरु की शक्तियों पर निर्भर है। गुरु की शक्ति अगर ज्यादा है, तो कुण्डलिनी जल्दी जागृत होती है।

कुण्डलिनी शक्ति की जागृति में साधक या शिष्य का अपना प्रयास कुछ भी नहीं होता। बल्कि, कुण्डलिनी जागृति, गुरु की अनुकम्पा व कृपा का फल है। कुण्डलिनी शक्ति के मूलाधार से ऊपर उठने पर अनेक चक्रों से होकर जाना पड़ता है। शक्ति के इन चक्रों से होकर जाने पर, साधक या योगी को अनेक अनुभूतियां होती हैं। वह ब्रह्मांड के विभिन्न रहस्यों को जानने की क्षमता प्राप्त करता है। इस तरह शक्ति, चक्रों से होती हुई, सातवें चक्र सहस्त्रार तक पहुंचती है। जहां शिव, वाहेगुरु, परमब्रह्म, परम-शिव, शक्तिपुन्ज, महाजोत, निराकार, अखंडजोत, ईश, परमेश्वर, जगदीश्वर का वास है। यहां पर साधक या योगी, शिव से एकाकार कर या मिलकर, महा–समाधि, मुक्ति या निर्वाण प्राप्त करते हैं।

महा–शक्ति के इन आलौकिक चक्रों का विवरण इस तरह से है :–

(१) मूलाधार चक्र (२) स्वाधिष्टान चक्र (३) मणिपुर चक्र
(४) अनाहत चक्र (५) विशुद्ध चक्र (६) आक्षा चक्र
(७) सहस्त्रार चक्र

जय शिव–शक्ति, जय गुरु देव, जय माताश्री, जय–भारत

–इति–

प्राण - प्राण शक्ति

परमेश्वर ने अपनी लीलाओं से, इस ब्रह्मांड के कण–कण, जीव–जन्तुओं व वंस्पति को कार्यशील व चेतन रखने के लिए, शक्तियों द्वारा उनमें जीवन या जीवन शक्ति का संचार किया है। इस जीवन या जीवन शक्ति को प्राण या प्राण शक्ति भी कहते हैं। जब तक मनुष्य जीवित अवस्था में है, तब तक आत्मा के साथ, प्राण और सूक्ष्म शरीर भी, स्थूल शरीर के साथ रहता है। स्थूल शरीर, बार–बार जन्म लेता और मर जाता है। लेकिन सूक्ष्म शरीर मरता नहीं है। आत्मा मृत्युपरान्त प्राण, सूक्ष्म शरीर व पूर्व संस्कारों को साथ लेकर, नये कारण शरीर में जन्म ग्रहन करता है।

मृत्यु होने के उपरान्त या यू कहिये, कि आत्मा मृत शरीर छोड़ने के बाद, प्राण, सूक्ष्म शरीर और पूर्व संस्कारों को भी साथ लेकर जाता है। मृत्यु, सूक्ष्म शरीर को प्राण से अलग नहीं कर सकता है। जीव में क्रियाशील या कार्यशील प्राण, मृत्यु के उपरान्त अपना कार्य बंद कर देता है। प्राण सुषिप्ति अवस्था में, आत्मा व सूक्ष्म शरीर के साथ ही रहता है। सूक्ष्म शरीर अपने साथ मृत जीव या मनुष्य द्वारा किये गए पूर्व कर्म, बुद्धि, ज्ञान, मूढ़ता व अहंकार आदि साथ लेकर जाता है। इस के बाद प्रकृति, जीव आत्मा के पूर्व कर्मो द्वारा निर्धारित, सूक्ष्म शरीर के साथ, नये शरीर की संरचना करके, उसमें प्रतिरोपित कर देता है या भेज देता है। जितने अच्छे पूर्व कर्म हो, उतना ही नया जन्म या उतम नया जन्म, आत्मा को प्रकृति से मिलता है। अगर जीव के कर्म शून्य या पाप पुन्य समाप्त हो गए या पूर्व जन्मों का जप, तप, ज्ञान, ध्यान, भक्ति व कर्मयोग द्वारा अपने जगदाभिमुखी भावों को अन्तर्मुखी कर लिया या ईश्वर प्राप्ति का सहज मार्ग ढुड लिया है, तो ऐसा जीव, समाधि द्वारा ईश्वर से मिलने का अधिकारी होता है।

प्राण का जीव के मस्तिशक के साथ–साथ , आंख, कान, नाक, मुंह व श्वास पर पूरा नियंत्रन है। प्राण, जीव में अनेक प्रकार के कार्य करता है, जिन्हें अलग–अलग नामों से जाना जाता है। प्राण ने सारे शरीर के नियंत्रन व कार्य के लिए, अपनी क्षमताओं को पांच भागों में विभक्त किया है। प्राण अपना कार्य विशेष नाड़ियों द्वारा करता है। प्राण, पेट के नीचे वाले भाग को 'अपान', मध्य भाग को 'सम्मान', दिल वाले भाग को 'व्यान'; 'ऊदान' मास पेशियों को सुदृढ़ रखने के लिए मृत्युपरान्त भी अगले जन्म के लिए कार्य करता है। श्वास–प्रश्वास के लिए 'प्राण' कार्य करता है। प्राण की गति, सारे भागों में अविलम्ब होती रहती है। इस तरह प्राण–शक्ति को, जीवनी–शक्ति भी कहते हैं।

इस प्राण पर, जीव या मनुष्य का कोई नियंत्रन नहीं है। प्राण अपना कार्य, खुद बिना किसी विघ्न या नियंत्रन के करता है। मनुष्य की मृत्यु के उपरान्त,

प्राण सुषुप्ति अवस्था में, आत्मा के साथ ही चला जाता है। देखा गया है, कि कुछ योगियों ने प्राण शक्ति या कण्डलिनी शक्ति को नियंत्रित करके, दूसरे प्राणियों में संचारित किया है। इस तरह शक्ति का एक प्राणी से दूसरे प्राणी में भेजने या जाने को शक्तिपात कहते हैं। आम संसारी मनुष्य के लिए, ऐसा करना सहज नहीं है। इसे शक्तिपात के सामर्थ्य गुरु या योगी ही कर सकता है।

सूर्य या चंद्रमा को किरणों से, गर्मी, प्रकाश व शीतलता, जीव के शरीर, मस्तिश्क, मन, चित व प्राण पर बड़ा प्रभाव डालती है। इन के प्रभाव से मानव में, तमोगुण, रजोगुण व सत्वगुण की बढ़ोतरी होती है। सूर्य की गर्मी से शरीर को जहां बल मिलता है, वहीं आलस्य भी आ जाता है। जबकि प्रकाश व शीतलता, दृष्टि को स्थिर करके मस्तिश्क व बुद्धि पर अच्छा प्रभाव डालती है। चांदनी रात की शीतलता व शीतल प्रकाश, मनुष्य के आध्यात्मिक उन्नति व उत्थान के लिए आवश्यक है। योगियों, सन्त, महात्माओं, ध्यानियों, साधकों आदि ने एकाग्रता व ध्यान के लिए प्रातः चार बजे का समय निश्चित किया है। प्राण को सूर्य (Solar) और मन, चित को चंद्रमा (lunar) सम्बंधी कहा गया है। सूर्य की तेजमय किरणों की गर्मी और चंद्रमा के शीतल प्रकाश से, इस धरती के प्राणमय जीव, जन्तु व वंस्पति प्रभावित होते रहते हैं।

प्राणमय शरीर में तीन प्रकार की सूक्ष्म नाड़ियां है, जो मूलाधार से शुरू होकर, सहस्त्रार तक जाती है। इन तीन नाड़ियों को सुषुभ्ना, ईड़ा और पिंगला कहते हैं। मूलाधार से कुण्डलिनी–शक्ति जागृत होने पर, सुषुम्ना से होती हुई सहस्त्रार तक जाती है। जहां खुद परम पिता परमात्मा, ईश्वर, अखण्डजोत शक्तिपुंज, वाहेगुरु का वास है। बाकी दोनों नाड़ियां ईड़ा (बाईं ओर) पिंगला (दाईं ओर) में, प्राण वायु की गति ऊपर नीचे बनी या होती रहती है।

जीव –जन्तु, वायु या सांस नासिका से लेते हैं। जब वायु नासिका के दाएं भाग से होकर, अन्दर फेपड़ों में चली जाती है; तब शरीर में, गर्मी का एसास होता या आभास होता है; क्योंकि, दांए नासिका भाग को सूर्य प्रभावित करता है। इसी तरह, वायु नासिका के बाएं भाग से अन्दर फेपड़ों में चली जाती है; तो, शरीर में शीतलता का एसास होता है; क्योंकि, बांए नासिका भाग को चंद्रमा प्रभावित करता है।

सूर्य की उश्मा हमारे प्राण को प्रभावित करके, शरीर की मास पेशियों को सुदृढ़ व श्वास – प्रश्वास को सामान्य और अन्न का पाचन करके या पचाकर, दूषित द्रव्य को शरीर से बाहर निकालने में सहायता करता है। अगर कहा जाए, सूर्य प्राण शक्ति को बढ़ाने का कारण है, तो गल्त बात नहीं है। चंद्रमा हमारे मन व चित को प्रभावित करता है। चंद्रमा के प्रभाव से मनुष्य अध्यात्म की ऊंचाईयों को छू सकता है। अगर इच्छा–शक्ति प्रबल हो, तो मोक्ष, समाधि, निर्वाण, ईश्वर प्राप्ति का भी अधिकारी हो सकता है। जहां नासिका के दाएं भाग से ही, सांस लेने पर, शरीर तंत्र में अधिक गर्मी बढ़ने से हानि होने का ड़र है। वहीं दूसरी ओर, नासिका के बांए भाग से ही सांस लेने पर, शरीर तंत्र में, अधिक शीतलता

से हानि होने का भी डर है। नासिका के कभी दाएं, कभी बांए भाग से, सांस लेने पर शरीर में संतुलित उश्मा व शीतलता का समावेश होता है। दोनों नासिका छिद्रों से एक साथ सांस लेने पर, शरीर तंत्र पर कोई हानि नहीं होती या कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता है। ऐसा समय ध्यान, धारणा, साधना के लिए उपयुक्त बताया गया है।

जीव के बाएं भाग का नाड़ी तंत्र, जिसे योगिक भाषा में ईड़ा और दाएं भाग का नाड़ी तंत्र, पिंगला, चंद्रमा व सूर्य से प्रभावित होता है। जहां एक ओर सूर्य, प्राण और शरीर के अंगों का पोषण करके मांस पेशियों को हष्ट–पुष्ट व निरोग रखने में सहायता करता है, वहीं दूसरी ओर, चंद्रमा अपनी शीतलता से शरीर के अवरोधों को दूर करके, शान्ति, स्थिरता व मन, चित्त को शुद्ध करने में सहायता करता है। अगर प्रबल इच्छा शक्ति हो, तो अध्यात्म की उंचाईयों की ओर ले जाता है। योगियों ने ईड़ा की तुलना गंगा जी के शीतल व शुद्ध जल से की है; जो मनुष्य के बांए भाग से बहती रहती है; जिस में, गोता लगाने से, याने कि अपने अन्दर के विकारों को ध्यान, धारणा, जप, तप द्वारा समाप्त करना है। जिसे साधक याा भक्त का चित शुद्ध होकर, शान्त हो जाता है। पिंगला की तुलना, जमुना जी के शुद्ध जल से की है, जिस का प्रभाव सूर्य की तरह गर्म है। इस में गोता लगाने पर, अपने अन्दर के संचित पापों का नाश होता है। यह साधक के पाचन क्रिया को ठीक करके, शरीर को स्वास्थ व निरोग रखता है।

एक ओर जहां ईड़ा शरीर में शीतलता व स्थिरता लाती है; तो दूसरी और, पिंगला शरीर तंत्रों का पोषण करके शरीर को स्वास्थ रखती है। यह दोनों नाड़ियां, भौहों के मध्य में मिलती है और इस स्थान को, 'आज्ञा चक्र' कहते है। इसी 'आक्षा चक्र' पर ध्यान केन्द्रित या स्थिर करने से, योगी या साधक का चित्त शान्त हो जाता है और फिर शान्त चित, प्राण में विलय होकर, सहस्त्रार में जाता है। जहां योगी या भक्त या ध्यानी, समाधी का आनन्द उठाकर, परमेश्वर, परम–शक्ति, अखंड–जोत, शक्ति–पुंज, आदि–देव, परम–शिव, परम–ब्रह्म, सचिदानन्द, शिव–शक्ति, निराकर की अनुभूति प्राप्त करके एकाकार हो जाता है।

धार्मिक पुस्तकों में, गंगा जी, यमुनाजी, में नहाने या गोता लगाने से, पापों का नाश होकर, शुद्ध होने का बड़ा महत्व दिया जाता है। इन पुस्तकों में लिखें बातों का अभिप्राय यह है, कि अपने अन्दर से जो गंगा यमुना, ईड़ा पिंगला में प्रवाहित होती है। उन्हीं में डुबकी लगाने से अपने पापों का होम करके, शुद्धि करना है। यानेकि, अपनी चित शुद्धि के लिए, विषय वासनाओं व वृतियों को छोड़ने का योग, साधना, ध्यान, धारणा, जप, तप, भक्ति द्वारा प्रयास करना है। गंगा जी, यमुना जी में नहाने से, शरीर के बाहरी भागों की शुद्धि हो जाती है; अन्दर वाले भागों की नहीं। इस लिए अन्दर वाले भागों की शुद्धि करनी है।
जय–गुरु देव, जय शिव–शक्ति, जय–माताश्री, जय–भारत

–इति–

महा शक्ति - कुण्डलिनी शक्ति

भगवान श्रीकृष्ण श्रीमदभागवत गीता में कहते हैं:–

"भक्त्या मामभिजानाति यायान्यश्चस्मि तत्वतः।

ततो मां तत्वतो ज्ञात्वा विश्ते तदनन्तरम्।।"

अर्थ :– " उस पराभक्ति के द्वारा वह भक्त मुझ परमात्मा को, मैं जितना हूँ और जो हूँ , मुझे, तत्व से जान लेता है; फिर अपनी भक्ति द्वारा मुझे, इस प्रकार, तत्व से जानकर, तत्काल ही मुझमें ही प्रविष्ट हो जाता है।"

अर्थात – मेरे चाहने वाले भक्त, ज्ञान–योग, कर्म–योग, भक्ति–योग और ध्यान–योग द्वारा ही, मुझे प्राप्त हो सकते हैं। अन्य और कोई मार्ग नहीं है। ये सभी मार्ग एक साथ रहते हैं। जहां कर्म होगा, वहीं ज्ञान होगा; जहां ज्ञान होगा, वहीं योग होगा और जहां ज्ञान एवं योग होगा, वहीं भक्ति भी होगी।

ज्ञान का अर्थ जानना और योग का अर्थ, वासना–वृतियों का विरोध करके, प्रभू परमेश्वर से मिलना है। इसलिए ज्ञान द्वारा प्रभू को जानना तथा योग द्वारा मिलना ही पराभक्ति है। अगर ज्ञान और भक्ति द्वारा प्रभू को जानेंगे नहीं और योग साधना द्वारा मिलेंगे नहीं, तो यह भक्ति कैसे हो सकती है। इसलिए प्रभू को जानने व मिलने के लिए भक्ति करनी चाहिये। भक्ति के साथ–साथ, योग साधना भी करनी चाहिये। जब भक्ति द्वारा अपने अन्तर–मन में, कण–कण में, भगवान को बिठा लेंगे, तभी समाधी, भुक्ति, निर्वाण होगा। इस तरह, हम प्रभू को ठीक तरह से जान–पहचान सकेंगे और प्रभू परमेश्वर में लीन हो जायेंगे।

इसलिए, कर्म–योग, ज्ञान–योग, ध्यान–योग, भक्ति–योग जो एक दूसरे के पूरक हैं, के द्वारा ही परम पिता परमेश्वर से मिला जा सकता है। प्रभू से मिलने, समाधि, मोक्ष, निर्वाण के लिए, किसी विशेष पंथ, मज़हब, रिलिजन या सम्प्रदाय में दीक्षा लेने की आवश्यकता नहीं है। न ही मज़हब, सम्प्रदायों के झगड़ों में पड़कर समय गंवाने की आवश्यकता है। अगर आवश्यकता है, तो वह एक उतम एवं पूर्ण गुरु की और आत्मशुद्धि के लिए वासना रहित बनने की।

भगवान श्री कृष्ण श्रीमदभागवत गीता में आगे कहते हैं :–

" अनन्यश्चिंतयंतो मां ये जनाः पर्यपासते।

तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम।।"

अर्थ :– जो भक्तजन मुझ परमेश्वर को निरन्तर चिन्तन करते हुए निष्कामभाव से भजते हैं; उन नित्य निरन्तर मेरा चिन्तन करने वाले पुरुषों का योगक्षेम मैं स्वयं प्राप्त कर लेता हूँ।

मुझसे मिलने का रास्ता भी इतना सहज बना रखा है, कि यदि तुम जान लोगे, तो बिना घर बार छोड़े, संन्यास लिए बिना ही, आनन्द से मुझे मिल

सकोगे। यह रास्ता इतना सहज होने पर भी, जब तक कि तुम, मेरे लिए व्याकुल नहीं होते, तब तक तुम्हें नहीं मिल सकता। मेरा चिन्तन करने वालों की मैं विघ्न–बाधाओं से बचाकर रक्षा करता हूँ। मैं ही सब छोटे–बड़े जीवों का भरण–पोषण करता हूँ। तुम एकाग्र होकर मेरी उपासना करो। योग भी मैं दूगा और रक्षा भी मैं ही करुगा।

सीधे शब्दों में यदि हम में प्रभू प्राप्ति की प्रबल इच्छा है; तो सब से पहले हमें अपने विषय–विकारों, जैसे काम, क्रोध, लोभ, मोह एवं अहंकार से विरक्त या अलग होना है। इन वासना–वृतियों को छोड़कर या संकल्प करके ईश्वर, परमेश्वर की भक्ति करनी चाहिये। इसमें कोई संशय नहीं, कि प्रभू हमारी रक्षा भी करेंगे और योग्य गुरु से साक्षात्कार करा कर योग भी देंगे।

योग शिखोपनिषद् में भगवान ब्रह्माजी, भगवान शिवजी से कहते हैं :–

इस संसार में सब जीव सुख–दुख, जन्म–मृत्यु और माया–जाल के चक्कर में झकड़े हुए पड़े हैं; उनकी मुक्ति के उपाय क्या है; मुक्ति कैसे हो सकती है; कृपया विस्तार से बताईये, कि मनुष्यों को ललसा, हिन्सा, मोह व मायारुपी पाश और जन्म–मृत्यु से बाहर निकालने वाला, व्याधिनाशक, महाआनन्द और महासुख देने वाला सिद्ध मार्ग क्या है।

बातें सुनकर, भगवान शिवजी, भगवान ब्रह्मा जी से कहने लगे, कि यह मार्ग कैवल्यरुप परमपद है। योग के बिना इसे अन्य प्रकार के मार्गो से प्राप्त करना सरल नहीं, बल्कि कठिन है। केवल सिद्ध मार्ग, 'महा–योग', से ही इसे प्राप्त किया जा सकता है। क्योंकि, योग मार्ग के बिना, किसी अन्य मार्ग से मन को वश में करना सहज नही है । मन के वश में होते ही, योग सिद्ध हो जाता है और मुक्ति का मार्ग प्रशस्त होता है।

भगवान शिवजी आगे कहते हैं :– यह योग 'महायोग' के नाम से कहा गया है। देखने में आया है कि साधारणतः लोग हठयोग, मन्त्रयोग, लययोग और राजयोग को भिन्न – भिन्न समझते हैं। परन्तु ये योग, भिन्न – भिन्न नहीं है; यह एक दूसरे के पूरक है। ये चारों योग, कुण्डलिनी शक्ति के जागृत होने पर, स्वयं अपने आप ही होते हैं। इसी लिए इसे 'महायोग' या 'सिद्ध उपाय' कहते हैं। जब किसी कुण्डलिनी शक्ति सम्पन गुरु के अनुग्रह या कृपा से, मनुष्य के संचित पापों के नाश होने पर, मन, में सदिच्छा जाग उठेगी, तब इस ब्रह्मांड में होने वाले आलौकिक और कल्पनातीत विषय को अनुभव कर सकोगे। जब मन की सदिच्छा प्रबलता को प्राप्त होगी, तब मनुष्य के अन्दर छिपी हुई, देवीय शक्तियों का विकास होगा। आंतरिक विकास के होते ही, 'महायोग' का मंत्र, शारीरिक, मानसिक व आत्मिक प्रसन्नता प्रदान करेगा।

याज्ञवल्क्य संहिता में कहा गया है :– "मनुष्य के शरीर के मध्य पेट के पास, नाभिस्थान है और वहीं पर मैं, (जीवात्मा, परमात्मा, आत्मशक्ति) वैश्वानर

रुप से रहता हूँ। कुम्भक प्राणायाम द्वारा, मुझे वहां जलता हुआ देखोगे या पावोगे या मैसूस कर सकोगे। मैं, अग्नि–रुप से, नाभिस्थान में रहकर, प्राण और अपान के सहयोग से, चार प्रकार के अन्न को पचाता हूँ। देह के मध्य में, सदृश त्रिकोण अग्नि का स्थान है। कुम्भक करके मुझे वहां प्रकाशमान पावोगे या देखोगे।

मनुष्य के नाभिस्थान के पास ही मूलाधार है। वहीं से सब नाड़ियों की उत्पति होती है। इस लिए इन नाड़ियों के मूलस्थान को 'मूल – आधार' या 'मूलाधार' कहते हैं। इस मूलाधार से कुछ नाड़ियां ऊपर की ओर उठती है और कुछ नीचे की ओर चली जाती है। शक्ति या कुण्डलिनी शक्ति को जागृत करने के लिए, इसी मूलाधार के पास जाने के लिए, अन्दर का रास्ता बंद है। कुम्भक प्राणायाम करके, प्राण वायु को अधिक बढ़ा लेने से, तथा प्रबल प्राण प्रवाह द्वारा मूलाधार का द्वार खुल जाता है। द्वार के खुल जाने से, प्राण के साथ–साथ, मन भी इसमें चला जाता है। कुण्डलिनी शक्ति के जागृत होने पर, पराशक्ति मेरुदण्ड, सुषुम्ना, मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहात, विशुद्ध और आक्ष चक्रों से होती हुई, सहस्त्रार में (मस्तिश्क में) जा पहुंचती है। कुण्डलिनी शक्ति के मस्तिश्क में पहुचने पर साघक पुन : संसार में लोट नही सकता है। सहस्त्रार में, पहुंचते–पहुंचते, मार्ग में अनेक प्रकार के आलौकिक अनुभव होंगे; जिन्हे देखकर या अनुभव कर, साधक आश्चर्यचकित हो जाता है। यहां स्हस्त्रार में स्वयं परमेंश्वर विराजते हैं। इस तरह साधक यहां पर समाधि या महासमाधि का आनन्द उठाकर, परमानन्द से भी एकाकार कर सकता है।

कुण्डलिनी शक्ति के जागृत होने पर, जब मन प्रकृति की सीमा से कुछ आगे चला जाता है या मन विचार शून्य होने लगता है, तब प्रथम आनन्द की शब्द ध्वनि सुनकर, मन प्रसन्नचित होने लगता है और इस तरह साधक के कर्ण–कपाट खुल जाते हैं। फिर अभ्यास द्वारा साधन का समय बढ़ाकर, दिव्य–गन्ध का सौयम अनुभव होने लगता है। शरु–शरु में साघक दिव्य–गन्ध सहन नहीं कर पाता है। फिर आगे चलकर या बढ़कर ध्यान या साधन में, दिव्यज्योति या आत्मज्योति के प्रकाश का अनुभव या दर्शन होकर, साधक की सुध–बुध को हर लेता है। कुछ काल या समय बाद, दिव्य मनुष्यों, देवताओं व अन्य आलौकिक जगहों व वस्तुओं के दर्शन होने लगते हैं। अनेक सूर्य, चन्द्रमा व ब्रह्मांड के तारे दिखाई देते हैं। इस तरह शक्ति अनेक चक्रों से होती हुई साधक को अनेक चमत्कार दिखाकर, सहस्त्रार में पहुंच जाती है। जहां शक्ति या प्रभू या ईश्वर या परमेश्वर का परम धाम है। यहां पहुंचकर साधक, परमेश्वर के बारे में सब कुछ जान लेता है या अनुभव करता है। अगर इच्छा शक्ति प्रबल हो, तो ईश्वर से मिल भी सकता है; साक्षात्कार भी कर सकता है; पा भी सकता है।

योग दो प्रकार का है। पहला '**अभावयोग**' और दूसरा '**महायोग**' कहलाता

है। अभावयोग में योगी या साधक आत्मा को ही शून्य मानकर, ध्यान द्वारा परमेश्वर से साक्षात्कार करता है। महायोग में योगी या साधक आत्मा को ही, ध्यान द्वारा नित्यानंद स्वरुप को देखता है और फिर समाधि के समय, प्रभू परमेश्वर से एकाकार भी करता है। भगवान शिव कहते हैं, "कि इन दोनों योगों में से, महायोग ही परम श्रेष्ठ है, जो समाधि द्वारा मुक्ति का मार्ग दिखाकर, ईश्वर से मिलाता है।

कुण्डलिनी शक्ति, शक्तिपात या पापों के नाश होने से या प्राणायाम योग, द्वारा जागृत होकर क्रियाशील होती है। साधारणतः लोग समझते हैं; कि कुण्डलिनी शक्ति के जागने से ही काम बन जाता है; लेकिन ऐसा नहीं है। कुण्डलिनी शक्ति के जागने से ही काम नहीं चलता है; जागकर क्रियाशील होने से काम होता है। अपनी बुराईयों, वासना, वृतियों व अन्य विकारों को नियंत्रि करके, आत्म–शक्ति का, महायोग, अभावयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग व प्राणायामयोग द्वारा विकास करके, दिव्य अनुभव, आनन्द और उल्लास की प्राप्ति होती है। योगी, साधक महासुखी अनुभव करता है। मानसिक व शारीरिक कष्टों की निवृति होती है। बिगड़े कार्य अपने आप, सफल होने लगते हैं। काम विकारों से मन को रोककर चित शान्त हो जाता है। इस तरह, हमारे पूर्व किये गए पापों का नाश होने लगता है।

कुण्डलिनी शक्ति, योग, प्राणायाम, भक्ति द्वारा जागृत होती है। कुण्डलिनी शक्ति के जागृत होने तक, बड़ा परिश्रम करना पड़ता है। इसमें सालों साल भी लग सकते हैं। लेकिन, योग–साधना के सामर्थ्य गुरु द्वारा शक्तिपात से, कुण्डलिनी शक्ति कुछ की क्षणों से लेकर, एक साल के अन्दर – अन्दर जागृत हो जाती है। यह गुरु पर निर्भर है, कि उन की शक्तियां कितनी तीव्र हैं। जितनी ज्यादा गुरु की शक्तियां होगी, उतनी ही तीव्र गति से, शिण्य में शक्तिपात द्वारा कुण्डलिनी शक्ति जागृत होगी।

योगशिखोपनिषद में कहा गया है :– कुम्भक प्राणायाम द्वारा या शक्तिपात या शक्तिपात के सामर्थ्य गुरु के अनुग्रह या अनुकम्पा से, जब अन्तर–शक्ति या पराशक्ति या कुण्डलिनी शक्ति जागती है; तब आत्म शक्ति के कार्य करने से प्राण आधार चक्र में रुकता है; जिसे साधक या योगी का शरीर कांपने लग जाता है। मूलाधार में प्राण के रुकने से साधक या योगी, आनन्द में मस्त होकर, नृत्य करने लगता है। वहां वायु का निरोध होने से सारा विश्व दीखने लगता है। क्योंकि, कुण्डलिनी शक्ति का निवास स्थान मूलाधार ही है और यहां पर सब देवता निवास करते हैं। वेदों का ज्ञान यहां भरा पड़ा है। इस मूलाधार से विशेष प्रकार की तीन नाड़ियां, जिन्हें ईड़ा, पिंगला और सुषुम्ना के नाम से जाना जाता है, शुरु होती है। ईड़ा, पिंगला और सुषुम्ना को त्रिवेनी –गंगा, यमुना और सरस्वती भी कहते हैं। वहां, मन–प्राण को एकत्र करके

अपने अन्दर गोता लगाकर, दिव्य स्नान एवं पान करने से, मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है। आधार के पश्चिम में स्वयंभू लिंग प्रतिष्ठित है। वहां पर सुषुम्ना में प्रवेश का प्रवेश द्वार (ब्रह्म द्वार) है। उसको खोल देने से या कुण्डलिनी शक्ति के जागृत होने से साधक, योगी, मनुष्य सांसारिक बन्धनों से छूट जाता है, और मोक्ष को प्राप्त होता है।

आगे फिर कहा गया है कि जब शरीर कांपने लग जायेगा; कुम्भक रोके भी नहीं रुकेगा; श्वास लेने में कष्ट या कमी – तेज़ी आ जायेगी; शरीर घूमने या ऐठने लग जाएगा या संभाला न जाये; तब समझ लेना चाहिये, कि कुण्डलिनी शक्ति जागृत होकर कार्य करने लगी है। उस समय निर्भय होकर चुपचाप देखना चाहिये, कि शक्ति कैसे कार्य करती है।

मंत्र जपते समय, नेत्र बंद करते ही, कुण्डलिनी शक्ति के जागृत होने पर आंखों की पलकें भारी हो जाती है। शरीर के किसी भी भाग में किसी भी तरह का दर्द या कष्ट, उठे या हो, तो अपने आप शुरु हुए योग–आसनों से, दर्द या कष्ट ठीक या दूर हो जाता है। मुंह से किसी भी प्रकार की भाषा, भजन, कीर्तन, रोना, हंसना, गाना, नृत्य करना या स्वर स्वतः बाहर निकलता है। शरीर के अंग–अंग में, प्राण की गति मालूम होने लगती है। या ऐंठन होने लगती है। भांग, चर्स, गांजा, स्मैक, जैसे माधक पदार्थों जैसी, की महक से नशा होने लगता है। अगरबती व अन्य सुगन्धों या स्पर्श का आभास होकर आनन्द आता है। नाद (वाध्य यंत्रों की आवज़) सुनाई देती है। शरीर शून्य या सुन्न हो जाता है। शरीर के भागों में, जैसे पांव, सिर, कमर, छाती, पेट, दिल, गला आदि में, शक्ति का वेग मालूम पड़ता है या दर्द उठता है या चक्र चलना अनुभव होता है; सर ज़ोर से घूमता हुआ लगता है; शरीर में अपने आप योगिक क्रियाएं होने लगती हैं; आसन पर बैठते ही भौहों के मध्य, आंखों के बीच या भृकुटि में दृष्टि स्थिर हो जाती है। तब नाना प्रकार के द्रश्य दिखाई देते हैं। शान्ति व आनन्द की अनुभूति होती है। अपना सूक्ष्म शरीर सामने प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है। अगर ऊपर लिखी हुई बातों में, आप कोई भी बात अनुभव करते हैं। तो जानिये, कि चित्त शक्ति, सिद्धि प्रदायिनी, देवी शक्ति, महामाया, ब्रह्मशक्ति, महादेवी, कुण्डलिनी शक्ति, क्रिया–शील होकर ठीक कार्य कर रही है।

कुण्डलिनी शक्ति का पहला अनुभव, आत्मा की ओर होता है और अंतिम अनुभव परमात्मा की तरफ होता है। शक्ति के जागृत होकर क्रियाशील होने पर, साधक, भक्त पर, प्रभू परमेश्वर की कृपा, दया व अनुकम्पा सदा दिन–रात बनी रहती है। इस तरह, साधक, भक्त पर, ईश्वर की ओर से, आनन्द का अमृत रस हमेशा बरसता रहता है। साधन द्वारा अपनी वृतियों व वासनाओं को समाप्त करके, मन को ईश्वर की ओर मोड़ कर, आलौकिक अनुभव व सिद्धियां प्राप्त होती है।

कुछ मननशील साधकों, योगियों, भक्तों की कुण्डलिनी शक्ति अपने आप, कभी–कभी जागृत हो जाती है। कुछ साधकों, भक्तों में, ध्यान व साधन के समय, शक्ति का वेग अत्याधिक तेज़ हो जाता है; जिस के लिए वे तैयार नहीं होते। क्योंकि, ऐसे साधकों, भक्तों में अधिक शक्ति गृहन करने की क्षमता नहीं होती है। वे शक्ति के वेग को नियंत्रित नहीं रख पाते हैं। इसलिए उनके लिए हमेशा खतरा बना रहता है। ऐसे साधकों, भक्तों को सामर्थ्य गुरु से परामर्श करते रहना चाहिये।

मनन–शील साधकों, भक्तों को ध्यान, साधन, भक्ति में अधिक से अधिक समय लगाना चाहिये। मन को स्थिर व विचार शून्य करके, वासनाओं व वृतियों को त्याग कर, अंतर–शक्ति को अधिक से अधिक बढ़ाकर, परम शक्ति परमेश्वर की ओर कदम बढ़ाना चाहिये।

शक्ति ऊपर से नीचे की ओर बहती है, जिससे संसार में जीव, जन्तु और वंस्पतियों की उत्पति होती है। जब यहीं शक्ति, नीचे से ऊपर की ओर चलने लगती है, तब साधक, योगी या भक्त का परमेश्वर से मिलाप होने लगता है। इस लिए हर भक्त, साधक, योगी को यह बात समझनी है, कि शक्ति का अध्यात्मिक उपयोग करके, उसे नीचे से ऊपर की ओर प्रवाहित कर, अपना और विश्व का भला करना है। जितनी जल्दी साधक, भक्त, मनुष्य का मन, इस संसार के मोह–बंधन से छूट जायेगा, विचार शून्य हो जायेगा, उतनी ही जल्दी से, वह अध्यात्म की ऊंचाईयों को छू लेगा।

कुण्डलिनी शक्ति परमात्मा की शक्ति है, जो परमात्मा द्वारा, सामर्थ्यवान गुरु के माध्यम से, मनुष्य के उत्थान के लिए, इस धरती पर भेजी गई है। गुरु या माध्यम ईश्वर स्वरुप है; जिसने अपनी सारी वृति, वासनाओं का त्याग किया है; मन में, स्त्री – पुरुष, ऊंच–नीच, अपना–पराया का भेद नहीं रखता है। ऐसा ईश्वर स्वरुप गुरु, ईश्वर के निकट है और ईश्वरीय शक्ति को नियंत्रित करना जानता है।

मनुष्य ब्रह्म इन्द्रियों से, बाहरी दृश्यों को देखता, सुनता, पहचानता है। वह प्रकृति की इस अनमोल देन से आनंदित अनुभव करता है। लेकिन जब मनुष्य की कुण्डलिनी शक्ति द्वारा आन्तरिक इन्द्रियां खुलती है, तो उसे ब्रह्म दृश्यों के साथ–साथ आन्तरिक दृश्य भी दिखाई देने लगते हैं, क्योंकि, गुरु द्वारा उसके सोये हुए चित पर चोट देकर, शक्तिपात द्वारा आत्मिक शक्ति को क्रियाशील होने पर साधक, योगी, भक्त को, तरह–तरह की अनुभूतियां होने लगती हैं। वह बिना देखे ही, ऐसे–ऐसे दिव्य दृश्य देखता है, जो उसने पहले कभी नहीं देखें हों। साधक इसे प्रभू कृपा समझ कर आनंदित अनुभव करता है।

प्राणायाम – योग, भक्ति – योग, ज्ञान – योग, कर्म–योग, ध्यान–योग व आसन-योग द्वारा भी, बिना गुरु के बहुतों में, शक्ति के जागने के शुभ लक्षण

देखे गये है। उन्हें भी दिव्य गन्ध, स्पर्श, भृकुटि में दृष्टि स्थिर होते ही, देवता के दर्शन हो गये। उन्हें भी नाद सुनाई दिये। दिल व मस्तिश्क की धड़कनें दर्द, शरीर की ऐंठन का अनुभव हुआ। लेकिन बिना किसी उपयुक्त गुरु के, उन्हें ऐसे दिव्य दृश्यों के बारे में बताता या समझाता; जैसे योग क्रियाएं, दि पेट, सिर, में दर्द या धड़कनें तेज़ होना, अपनी आत्मा का शरीर से बा निकलना आदि देख कर, डर जाना। कइयों ने ऐसे दिव्य दृश्यों को भूत– बाधा जानकर, ओझाओं, नीम हकीमों, डाक्टरों के पास जाकर, विचार–वि किया। उन्हें ऐसी दिव्य स्थिती का ज्ञान न होने की वजह से मंत्र, जादू–टो या दवाईयां आदि देकर, साधकों, भक्तों के कष्टों को ज्यादा बड़ा दिया।

ऐसा भी देखने में आया है, कि बिना गुरु के साधको, भक्तों की क्रिय कभी–कभी बहुत तेज़ हो जाती है। क्रियाओं को कम करना या रोकना, साध भक्तों की बात नहीं। ऐसे बिना गुरु के साधकों, भक्तों को, जिन्हे साधना, भ में विध्न आते हो, परामर्श देते हैं, कि योग–साधना के सिद्ध सामर्थ्य गुरु प्राप्त करें या उनके पास जाएं। उपयुक्त गुरु के मिलने पर उन्हें सम्मान आ से क्रियाओं या भक्ति में आई बाधाओं के बारे में सविस्तार से कहें और बाधा व कष्टों को दूर करने की प्रार्थना करें। अगर ऐसा हो पाता है, तो अ महाशक्ति कुण्डलिनी द्वारा मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करके, परमपिता परमेश्वर समाधि, मुक्ति, निर्वाण द्वारा मिलाप कर सकते हैं।

कुण्डलिनी शक्ति क्या है

ईश्वर द्वारा रचित मानव शरीर के अनेक स्थानों में, कई सूक्ष्म नाड़ियां इनमें प्राण वायु की गति हमेशा बनी रहती है। इन सुक्ष्म नाड़ियों में कुछ विशि नाड़ियां, जैसे इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना है। इन नाड़ियों की उत्पति मूलाधार होकर, आक्षा चक्र और सहस्त्रार तक है। मेरुदण्ड़ (रीढ़ की हड्ड़ी) के बाह बायीं और से इड़ा,दाहिनी और से पिंगला लिपटी हुई है और सुषुम्ना मेरुद के अन्दर, मूलाधार से प्रारम्भ होकर सहस्त्रार तक जाती है। इसी मूलाधार समस्त ईश्वरीय शक्ति एक स्थान पर स्थित है। यहां यह आलौकिक शवि कुण्डली मारकर सर्प के समान बैठी हुई सोई रहती है। निद्रा अवस्था में, य जीव को शिव–स्वरुप का अनुभव करने नहीं देती है। इस महा–शक्ति व कुण्डलिनी शक्ति कहते हैं। शिव कृपा व सामर्थ्य गुरु की अनुकम्पा से मूल ार में स्थित यह शक्ति, जागृत होकर अपने चैतन्य स्वरुप में प्रतिष्ठित होती जो साधक या योगी को शिव–भाव से शिव–मय व जीवनमुक्ति का मार्ग प्रश करके आनन्दमय करती है। जागृत कुण्डलिनी शक्ति साधक या योगी व निर्विकल्प समाधि तक पहुचा देती है।

साधक या योगी, अपने प्रयास, गुरु–कृपा, शक्तिपात, योगासनों, प्राणाया

ईश्वर–भक्ति, निस्वार्थ कर्म या कार्य, वैराग्य, त्याग, जप, तप, ज्ञान आदि द्वारा शक्ति जागृत कर सकता है। कुण्डलिनी जागृत होने के लिए, सालों साल लगते हैं। लेकिन शक्तिपात के सामर्थ्य गुरु द्वारा कुछ ही क्षणों से लेकर, एक साल के अन्दर – अन्दर, कुण्डलिनी शक्ति जागृत होकर कार्य करने लगती है। शक्ति के जागृत होते ही, साधक या योगी, अपने अन्दर महा–सुख और महा–आनन्द अनुभव करता है। अभ्यास द्वारा जागृत कुण्डलिनी मूलाधार से ऊपर उठकर, सुषुम्ना नाड़ी से होकर सहस्त्रार में जाकर, वहां विराजमान भगवान से एकाकार कर, साधक या योगी के स्मस्त मनोरथ पूर्ण करती हुई, अनेक सिद्धियां प्रदान करती है। इस के लिए साधक को अपनी वृतियों, जैसे काम, कोध, लोभ, मोह एवं अहंकार का निषेध कर, साधन में अपने अथक प्रयास द्वारा, शिव प्रेम में शिव–मय, ईश्वर प्रेम में ईश्वर–मय और ब्रह्म प्रेम में ब्रह्म–मय होना पड़ेगा।

कुण्डलिनी शक्ति को मूलाधार से ऊपर उठने पर, अनेक चक्रों में से होकर जाना पड़ता है। शक्ति के इन चक्रों से होकर जाने पर, साधक या योगी को अनेक आलौकिक अनुभूतियां होती है। वह ब्रह्मांड के अनेक रहस्यों को जानने की क्षमता प्राप्त करता है। इस तरह शक्ति षटचक्रों से होती हुई, सातवें चक्र सहस्त्रार तक जाती है; जहां खुद शिव , वाहे-गुरु, परमेश्वर, ब्रह्म, ईश्वर, शक्तिपुंज, ईश, महा–ज्योति का वास है। यहां साधक या योगी, समाधी या महा– समाधी को प्राप्त होता है।

इन चक्रों या सात आलौकिक चक्रों का, जो मेरुदण्ड (रीढ़ की हड्डी) के निचले भाग से शुरु होकर, ऊपर उठकर, मस्तिशक तक जाती है, का विवरण इस तरह है :–

(१) मूलाधार चक्र (२) स्वाधिष्ठान चक्र (३) मणिपुर चक्र
(४) अनाहत चक्र (५) विशुद्ध चक्र (६) आज्ञा चक्र
(७) सहस्त्रार चक्र

मूलाधर चक्र

मूलाधार चक्र मानव शरीर में स्थित, चक्रों में से प्रथम चक्र है। इस मूलाधार चक्र को, आधार–चक्र भी कहते हैं। यह चक्र गुदा प्रदेश में स्थित है। यहां पर ईश्वरीय शक्ति कुण्डलिनी का वास है। यहीं से कुण्डलिनी शक्ति जागृत व क्रियाशील होकर, ऊपर की ओर अन्य चक्रों का भेदन करके सहस्त्रार तक जाती है। इस चक्र का ध्यान व मनन करने से, शरीर की शुद्धि, मन पवित्र, स्वास्थ, बल और बुद्धि की वृद्धि होती है। यहां का प्रधान देवता भगवान गणपति है। इस चक्र का कार्य शरीर से व्यर्थ मल को बाहर निकलना है।

स्वाधिष्ठान चक्र

स्वाधिष्ठान चक्र, मूलाधार चक्र के बाद का दूसरा चक्र है। यह लिंग

स्थान में स्थित है। इस चक्र का कार्य शरीर से मूत्र विसर्जन करना है। यह स्थान पुरुषों के वीर्य और स्त्रियों के रज का है, जिससे जीवों की उत्पति होती है। इस चक्र में ध्यान स्थित होने पर साधक या योगी में धैर्य, बल, दृढ़ता, विश्वास व अधिक क्षमता की प्राप्ति होती है। इस चक्र के प्रधार देवता प्रजापति भगवान ब्रह्माजी है।

मणिपुर चक्र

मणिपुर चक्र, मूलाधार चक्र व स्वाधिष्ठान चक्र के बाद का तीसरा चक्र है। यह स्थान नाभि के पीछे मेरुदंड के भीतर सुषुम्ना में स्थित है। इस स्थान में प्राण वायु का निवास है। शरीर के हर भाग को, यहीं से वायु द्वारा पोषण मिलता है। यह स्थान अग्नि तेज तत्व का द्योतक है। इस स्थान में मन का निवास है। इस लिए यहां पर इच्छाएं उत्पन्न होती रहती हैं। इस चक्र की साधना से साधक या योगी, को महा–आनन्द, शान्ति, समता का भाव, वैराग्य की इच्छा, निस्वार्थ कर्म करने की प्रेरणा, निश्चलता व एकांतप्रियता प्राप्त होती है। इस स्थान के प्रधान देवता भगवान विष्णु जी है।

अनाहत चक्र

अनाहत चक्र, मूलाधार चक्र, स्वाधिष्ठान चक्र, मणिपुर चक्र के बाद का चौथा चक्र है। हृदय के सामने मेरुदण्ड के भीतर सुषुम्ना में यह चक्र स्थित है। इस चक्र के बाई ओर मेदा है, जहां अन्न या आहार का पाचन होता है। इस स्थान के प्रधान देवता, अधिपति भगवान शिव है। इस स्थान में प्राण वायु का निवास है। यहां से सारे शरीर का पोषण होता है। इस चक्र की साधना से, साधक या योगी में प्रेम, विवेकशीलता, वात्सल्य, दया, जिज्ञासा, करुणा व क्षमा की शक्ति प्राप्त होती है।

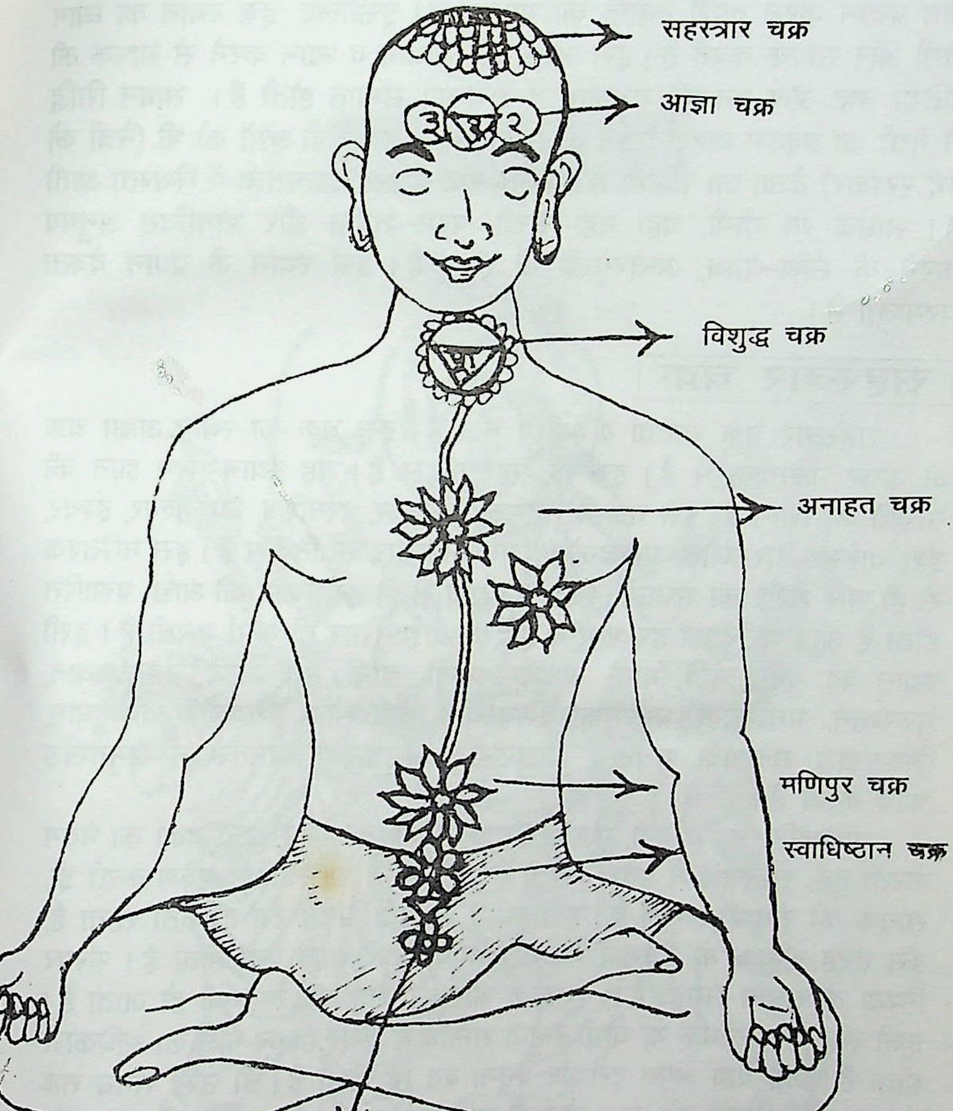
विशुद्ध चक्र

विशुद्ध चक्र मेरुदण्ड के भीतर सुषुम्ना में स्थित पांचवा चक्र है। इस चक्र का स्थान कण्ठ के पास है। जागृत कुण्डलिनी शक्ति, मूलाधार चक्र से ऊपर की ओर उठकर, विशुद्ध चक्र से होकर, आज्ञा चक्र और आज्ञा चक्र से होकर सहस्त्रार तक जाती है। इस चक्र की साधना व ध्यान सिद्धि से साधक या योगी में, योग साधना की शक्ति आ जाती है। इस स्थान के प्रधान देवता भगवान सदाशिव है।

आज्ञा चक्र

आज्ञा चक्र, मेरुदण्ड के ऊपरी भाग सुषुम्ना में स्थित छटा चक्र है। इस चक्र का स्थान, भूमध्य त्रिकुटी या भृकुटी है। क्योंकि, इसी भाग में तीन प्रधान

सप्त चक्र


सहस्त्रार चक्र
आज्ञा चक्र
विशुद्ध चक्र
अनाहत चक्र
मणिपुर चक्र
स्वाधिष्ठान चक्र
मूलाधार चक्र

नाड़ियां इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना आकर मिलती है। इस स्थान को त्रिवेणी भी कहते हैं। इस स्थान का तेज, सूर्य, चन्द्रमा के तेज से भी अधिक प्रबल है। यह स्थान ज्ञानेद्रियों का केन्द्र भी है। यहां से नेत्रों को प्रकाश मिलता है। यह स्थान, ज्ञान प्रदान करने वाली ज्योति का भण्डार है। इसीलिए, इस स्थान का ध्यान योगी और साधक करते हैं। इस स्थान की साधना व ध्यान करने से साधक की वृतियां नष्ट और मन की चंचलता व वासनाएं समाप्त होती हैं। साधन सिद्धि से नेत्रों का प्रकाश बाहर देखने के साथ–साथ, अन्दर के अंगों को भी (नेत्रों को बंद रखकर) देखा जा सकता है। भ्रान्ति नष्ट होकर, आत्मतत्व में स्थिरता आती है। साधक या योगी, यहां महा–सुखी, परम–शान्ति और आनन्दित अनुभव करने के साथ–साथ, अन्तरमुखी भी होता है। इस स्थान के प्रधान देवता परमात्मा है।

सहस्त्रार चक्र

सहस्त्रार चक्र सातवां व अंतिम चक्र है। इस चक्र का स्थान, आक्षा चक्र के ऊपर मस्तिश्क में है। इस के सहस्त्र दल है। यह स्थान परम ज्ञान की उत्पति का स्थान है। इस चक्र में सदगुरु, परमेश्वर, परमशिव, जगदीश्वर, ईश्वर, ईश, वाहेगुरु, परमजोत, अखंडजोत, शिव, निराकार का निवास है। इस मस्तिश्क से ही सारे शरीर का संचालन होता है। यहां से ही हर प्रकार की आज्ञा प्रसारित होती है और शरीर का हर भाग व इंद्रियां आज्ञानुसार ही कार्य करती है। इसी स्थान को मुनी, ऋषि, योगी, साधक, ध्यानी, ज्ञानी, भक्त आदि, ब्रह्म स्थान, गुरुस्थान, भ्रमरलोक, भ्रमरगुफा, शिवस्थान, अमरलोक, शिवलोक, विष्णुधाम, शिखरखंड, सचलोक, सचखंड, शिखरलोक, अमृतलोक, अमृतस्थान, अमृतखंड आदि कहते हैं।

महाशक्ति, कुण्डलिनी, मूलाधार चक्र से जागृत होकर, अन्य चक्रों का भेदन करती हुई, सहस्त्रार में प्रवेश करती है। शक्ति के सहस्त्रार में प्रवेश करते ही, साधक की समाधी लगती है। इस स्थान से सदा अमृत रस टपकता रहता है, इस तरह साधक के द्वैतभाव का नाश होकर अदैतभाव पैदा होता है। संसार मिथ्या के समान लगता है। साधक और परमेश्वर का रुप एक हो जाता है। इसी स्थान पर साधक या योगी सहज समाधि में स्थिर होकर मोक्ष का अधिकारी होता है। जब यहां अमृत रस का बनना बंद हो जाता है। तो उसी समय साधक या योगी, ब्रह्म को प्राप्त होता है। वे महापुरुष, योगी, ध्यानी, भक्त धन्य है, जो इस स्थिती में पहुंचकर, शिव, परमब्रह्म, परमेश्वर, वाहेगुरु, परमजोत से एकाकार होकर ईश्वररुप या स्वरुप बन जाते हैं।

जय शिव–शक्ति, जय–गुरुदेव, जय–माता श्री, जय–भारत।

–इति–

तीसरा अध्याय

अंमोल वचन



तीसरा अध्याय : अंमोल वचन

ॐ

१. धर्म मनुष्य को मनुष्य से जोड़ता है, न कि तोड़ता है।

२. मनुष्य का कर्तव्य दूसरों को सुख पहुचाना है, न कि दुख देना है।

३. प्रभू निराकार भी है और साकार भी; प्रभू मन की शुद्धता व शून्यता से प्राप्त हो सकते हैं।

४. हमेशा सच बोलें, सच के सिवा कुछ भी न बोलें।

५. दूसरे लोगों की गलतियां ढूडने के बजाए, अपनी गलतियां सुधारने में बड़प्पन है।

६. हमेशा मीठे वचन ही बोलें; मीठे वचनों का फल भी मीठा होता है।

७. अहंकार से मनुष्य की बुद्धि नष्ट होती है; इसे अपने पास आने न दें।

८. जहां–जहां, निस्वार्थ प्रेम, दया व करुणा है; वहां–वहां, देवता वास करते हैं।

९. महात्मा उसे कहेंगे, जिस के मन में प्रभू प्रेम, निर्धन, बीमार, छोटे व बेसहारा लोगों के प्रति, सेवा–भाव व तड़प हो।

१०. अगर धन देकर किसा का भला करते हैं, तो जिह्वा पर न लाएं। जिहवा पर लाने से दान की महानता समाप्त हो जाती है।

११. अगर मन में यह इच्छा है, कि दूसरे लोग आपका सम्मान करें; यह तभी सम्भव होगा, जब आप भी दूसरों के प्रति सम्मान प्रदर्शित करें।

१२. महान व सुखी मनुष्य वह है, जो न किसी की निन्दा व न कामना करता और न ही वैर रखता है।

१३. जिसके मन में दया–भाव है या मन दया का सागर है; उसके मन में प्रभू का वास है।

१४. धर्म देना जानता है, लेना नहीं।

१५. सब लोगों का शुभ चाहना, चाहे वह आप का दुश्मन ही क्यों न हो, सच्चा धर्म है।

१६. जिस तरह नदी, नाले, समुद्र की ओर जाकर, समुद्र को प्राप्त होते हैं; उसी तरह आत्माएं, प्रभू की ओर जाकर, प्रभू को प्राप्त होकर, शान्त होती है।

१७. महान मनुष्य वह है, जो कथनी और करनी में फरक नहीं समझता है; अथवा जिस का शरीर, कर्म, मन और आत्मा शीशे की तरह साफ है।

१८ बड़प्पन गिरने में नहीं, बल्कि गिर कर उठने में है।

१६. धन व्यय करना उतना आवश्यक नहीं, जितना कि समय का सदोपयोग करना आवश्यक है; व्यय हुआ पैसा आ सकता है; जब कि, बीता समय वापस नहीं आ सकता है।

२०. सच्चा धर्म, दीन–हीनों की सेवा करना है।

२१. अधिकतर लोग अपने शरीर व सुन्दर कपड़ों पर ज्यादा ध्यान देते हैं, लेकिन मन को सुन्दर बनाने का प्रयास ही नहीं करते हैं।

२२. तृष्णा दुख को बढ़ाती है; जब की संतोष सुख पहुंचाती है।

२३. अगर आप दूसरों का मान–सम्मान करते हैं; तो दूसरा भी आप के प्रति ऐसा ही भाव रखेगा।

२४. गुरु वह है, जिस के द्वारा प्रभू के दर्शन होते हैं।

२५. काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार को छोड़कर ही, ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है, अन्यथा नहीं।

२६. ईश्वर को बाहर खोजना, भटकने के बराबर है, जबकि ईश्वर आप के अन्दर ही विराजमान है।

२७. मनुष्य का मनुष्य के प्रति प्रेम व श्रद्धा रखना, प्रभू के प्रति प्रेम व श्रद्धा रखने के बराबर हैं।

२८. दान करना अच्छी बात है; दान करना फलदार वृक्ष लगाने के बराबर है; आनेवाले समय में, जब इच्छा हो, छाया व फल–फूल प्राप्त कर सकते हैं।

२६. शुद्ध आचार–विचार व सच्ची श्रद्धा द्वारा, ईश्वर की ओर एक कदम बढ़ाते है; तो ईश्वर भी हमारी ओर चार कदम बढ़ाते हैं।

३०. बुद्धिमान लोग ज्यादा सुनते और कम बोलते हैं; जबकि अज्ञानी लोग सुनते कम और बोलते ज्यादा है।

३१. परमेश्वर इस सारे ब्रह्मांड को देख रहा है; हम उससे देख नहीं पाते हैं; क्योकि प्रभू को देखने के लिए मन की आंखें चाहिए।

३२. प्रभू का चिन्तन करने से भक्ति आती है; भक्ति से मन शुद्ध हो जाता है; शुद्ध मन से आत्मिक शान्ति व प्रभू की प्राप्ति होती है।

३३. जो मनुष्य अपने प्रयास द्वारा, अपनी वासनाएं समाप्त करके, दूसरों का दिल जीतता है, तो समझएं उसने सारा विश्व जीत लिया है।

३४. बाहर की सफाई करने से शरीर स्वच्छ हो जाता है; अन्दर की सफाई से आत्मा स्वच्छ हो जाती है।

३५. बुद्धिमान लोग दूसरों की गलतियों से सीखते हैं; जबकि मूर्ख लोग दूसरों की गलतियां निकालते हैं।

३६. मेहनत का फल शरु में कड़वा, लेकिन अन्त में मीठा होता है।

३७. अहंकार मनुष्य को नीचे की ओर गिराती है; जबकि, करुणा ऊपर की ओर ले जाती है।

३८. अच्छे लोगों से मित्रता करना, प्रसन्नता बड़ाता है, दुख व चिन्ता को मिटाता है।

३९. करुणा वह भाषा है, जिसे बहरा सुनता है और अन्धा पढ़ता है।

४०. जीवन जीने का नाम है; न कि चिन्ता करने का।

४१. ध्यान, प्राणायाम व जाप करने से, मन शुद्ध होकर शान्त हो जाता है।

४२. सच्चा मनुष्य वह है, जो दीन दुखियों के काम आए।

४३. माँ होने पर मनुष्य सनाथ हो जाता है, न होने पर अनाथ हो जाता है।

४४. माँ के बलिदानों का ऋण कोई बेटा, बेटी चुका नहीं सकता, सकती है; चाहे वह भू–मण्डल का स्वामी ही क्यों न हो।

४५. माँ फिर भी माँ है – जीती, जागती, पवित्र।

४६. माँ का क्रोध अपने बच्चों के लिए समुद्री लहर की तरह है; जितनी जल्दी चढ़ता है; उतनी ही जल्दी उतर भी जाता है।

४७. माँ की सेवा करना, ईश्वर की सेवा करने के बराबर है।

४८. माँ की जितनी भी सेवा की जाए कम है; तब भी बच्चे (बेटा, बेटी) उसका ऋण नहीं चुका पायेंगे।

४९. सुख–दुख, हर प्राणी के जीवन में आता है; इसे देने वाला कोई दूसरा नहीं; यह तो अपने किये हुए कर्मों का फल है।

५०. निस्वार्थ कर्म करें; फल की प्राप्ति या इच्छा ईश्वर पर छोड़ें।

५१. साधन करना खुद धन कमाना है और सत्संग करना, धनी व्यक्ति को गोद में बैठना है; जहां गोद जाने वाले को खुद धन कमाना नहीं पड़ता, बल्कि उसे कमाया हुआ धन मिलता है; यू कहिये, उसे ईश्वर की प्राप्ति जल्दी होती है।

५२. हम सब परम पिता परमेश्वर की सन्तान है; हमें दूसरों के कष्टों को देखकर प्रसन्न नहीं होना चाहिये; जो ठीक बात नहीं है; यह एक नीच व जघन्य कर्म

है।

५३. बड़ों व गुरुजनों के प्रति विनम्रता का भाव रखना व सम्मान प्रदर्शित करना; सफलता की पहली सीढ़ी है।

५४. असहायों, गरीबों, बीमारों व बच्चे, बूड़ों के प्रति सेवा, दया भाव रखें; क्योंकि, इन की सेवा करना ईश्वर की सेवा करने के बराबर है।

५५. जात–पात, छल–कपट, ऊंच–नीच, धन–लोलुपता, छुआ–छूत, हिन्सा–प्रति हिन्सा, हमें नीचे की ओर ले जाती है; इन से छूट कर हम ऊपर की ओर जाते हैं।

५६. मनुष्य का जन्म बड़ा दुर्लभ है; इसे ईश्वर के नाम से जोड़ लीजिए।

५७. यह जगत क्या है – यह जगत ब्रह्म से निकला है, ब्रह्म के अधीन है, ब्रह्म में लय होने वाला है और ब्रह्म से स्थित है।

५८. मैं कौन हूँ – यह शरीर नहीं, बल्कि एक आत्मा हूँ।

५९. जीव कौन है – जीव एक जीवात्मा है; जो ईश्वर की परा प्रकृति का अंश है; यह शरीर या मन जीव नहीं है।

६०. प्रेम क्या है – दूसरों के दुख व सुख को अपना दुख व सुख मानना ही प्रेम है; प्रेम में तेरा–मेरा, अपना–पराया, छल–कपट नहीं होता है।

६१. भक्ति क्या है – ईश्वर से निस्वार्थ प्रेम व प्रीति ही भक्ति है।

६२. धर्म क्या है – जो मनुष्य को मनुष्य के साथ जोड़े, न कि तोड़े; समस्त चर–अचर जीवों को एक ही दृष्टि से देखने का नाम धर्म है।

६३. मुक्ति कैसे हो – विषय–विकारों, वासना–आसक्ति, छल–कपट, ऊंच–नीच, तेरा–मेरा, के त्याग से, निस्वार्थ कर्म व प्रभू चिन्तन से मुक्ति हो सकती है।

६५. प्रार्थना क्या है – अपने इष्ट देव, प्रभू के गुणों का बार–बार चिन्तन, मनन को प्रार्थना कहते हैं।

६६. कोध क्या है – मन में अपराधी के प्रति बदले की भावना से, घृणा के भाव जागृत होकर मन मलिन हो जाता है; कर्तव्य विवेक और अच्छे बुरे की पहचान नहीं रहती व बुद्धि के ठीक से काम न करने को कोध कहते हैं।

६७. केवल भगवान और उसके भक्त – ये दो ही भला करले वाले हैं; तीसरे किसी व्यक्ति या वस्तु से भला हो जायेगा, यह बात है ही नहीं।

६८. जो पुरुष या मानव, धन–सम्पति, मान–सम्मान, वासना–आसक्ति, में सम है; अर्थात परिवार का पालन–पोषण बिना लालच के करता है; वह बुद्धिमान पुरुष कर्मयोगी कहलाता है।

६६. ध्यान व मनन से ईश्वर की प्राप्ति होती है।

७०. दूसरों के अच्छे कार्यों की प्रशन्सा करने से, दुश्मन भी, आप का मित्र बन जायेगा।

७१. अपनी प्रशंसा स्वयं नहीं करें; यह अपने मुंह मियां मिट्ठू बनने वाली बात है।

७२. मन की चंचलता पर अंकुश लगाने के लिए प्राणायाम, आसन व ध्यान के साथ–साथ संयम की भी आवश्यकता है।

७३. आत्मशुद्धि का सरल मार्ग राजस, तामस विचारों को अपने अन्दर न आने देना है और साथ में काम, क्रोध, लोभ, मोह एवं अहंकार से दूर रहना है।

७४. उपासना द्वारा पाप, लालच, छल, हिन्सा, कपट व अन्य विकारों से बचा जा सकता है।

७५. उपासना का सरल अर्थ, प्रभू परमेश्वर के गुणों का बार बार मनन और ध्यान करना है।

७६. उपासना मन की चंचलता को मिटाकर, अन्तकरण को निर्मल, शुद्ध और पवित्र करती है।

७७. ध्यान करने से पाप नष्ट होते हैं, मन एकाग्र होने लगता है, बुराईयां दूर भागती है और सतोगुण बड़ता है।

७८. ध्यान लगाने से मानसिक व शारीरिक रोगों की निवृति होती है और शरीर स्वास्थ हो जाता है।

७६. ध्यान करने से दुखों, कष्टों और चिंताओं का नाश हो जाता है।

८०. वैराग्य मन की उत्तम स्थिति है, जो सांसारिक आकर्षणों से मोहित नहीं होता।

८१. वैराग्य कर्म योग द्वारा हो सकता है।

८२. ज्ञान–योगः ज्ञान का अर्थ जानना और योग का अर्थ, वासना–वृतियों का विरोध करके, प्रभू से मिलना है।

८३. बिना अभ्यास के विद्या नष्ट हो जाती है।

८४. धर्म की रक्षक विद्या ही है; क्योंकि विद्या से ही धर्म और अधर्म का बोध होता है।

८५. कभी–कभी, हमें उन लोगों से शिक्षा मिलती है, जिन्हें हम अभिमान–वश अज्ञानी समझते हैं।

८६. सच्ची शिक्षा तो वह है, जिसके द्वारा हम अपनी आत्मा, ईश्वर और सत्य

को पहचान सकें।

८७. विश्व परमात्मा का रुप है।

८८. सत्य ही सब से बड़ा भल है।

८९. इस संसार में, जो मनुष्य, आसक्ति से रहित और बुद्धि से परे पहुंच गए हैं; वे ही सुखी है और बीच के सभी लोग कष्ट भोगते हैं।

९०. आलस्य पुरुषार्थ का दुश्मन है; यह जीवित प्राणी को मृत समान बनाता है।

९१. आत्म शुद्धि का सरल मार्ग अपने अन्दर राजस, तामस विचारों को न आने देना हैं।

९२. शक्ति के जागृत होने से, मनुष्य या साधक आनन्द को प्राप्त होता है।

९३ चंचलता पर अंकुश लगाने के लिए, ध्यान, आसन, प्राणायाम करने की आवश्यकता है।

९४. भक्ति : मनुष्य या भक्त का परमेश्वर से मिलने का एक माध्यम है।

९५. परमेश्वर : चर, अचर, विश्व, ब्राह्मांड, संसार को चलाने वाली एक अदृश्य आलौकिक शक्ति है।

९६. ईश्वर से मिलने के लिए वैराग्य की आवश्यकता है और वैराग्य के लिए, त्याग की भावना आवश्यक है।

९७. मन में हिंसा का भाव उठने से, बुद्धि मारी जाती है और शरीर की आकृति बिगड़ जाती है।

९८. संयास–योग और कर्म–योग दोनों ही कल्याण कारक है; परन्तु सन्यास की अपेक्षा निस्वार्थ कर्म श्रेष्ठ है।

९९. पुन्य कर्म का फल सात्विक और निर्मल है; राजस का फल दुख और तामस का फल अज्ञान है।

१००. काम, क्रोध तथा लोभ, यह आत्मा का नाश करने वाले हैं; इन का त्याग करना ही अति–उतम है।

१०१. सात्विक लोग, देवी देवताओं को पूजते हैं; राजसिक लोग, यक्ष–राक्षसों को पूजते हैं और तामसिक लोग भूत–प्रेतों को पूजते हैं।

–इति–

चोथा अध्याय

ईशस्तुति

गायत्री मन्त्र

"ऊँ भूर्भुवः स्वः तत्–सवितुर वरेण्यं,
भर्गो–देवस्य धीमहि, धियो यो – नः प्रचोदयात् ।"

अर्थ :– मैं उस महाशक्ति का चिन्तन करता हूँ; जो शक्ति तीनों लोकों में व्याप्त है; वेदों ने जिसे तत् नाम से पुकारा है; जो शक्ति इस सृष्टि को बनाती है, पालन तथा नाश करती है और जो वरण करने के योग्य है; जो शक्ति तेजो रुप है; द्योतनशील अथवा ऐश्वर्य देने वाली है; ऐसी उस महान शक्ति का मैं चिन्तन करता हूँ और प्रार्थना करता हूँ कि यह शक्ति मन्त्र मेरी बुद्धि को सत कर्मों में लगायें।

"प्रातः स्मरण मंगलस्तोत्रम्"

उत्तिण्ठो – त्तिण्ठ गोविन्द, उत्तिष्ठ गरुड़–ध्वज।
उत्तिण्ठ – कमलाकान्त, त्रैलोक्ये मंगलं कुरु।।

मंगलं भगवान् विष्णुः, मंगलं गरुड़ ध्वजः।
मंगलं पुण्डरीकाक्षः मंगलायतनं हरिः।।

मूकं करोति वाचालं, पंगुं लंघयते गिरिम्।
यत् कृपा तम्–अहं वन्दे, परमानन्द–माधवम्।।

नमो ब्रह्माण्य–देवाय, ग्रोब्रह्मण–हिताय च।
जगत्–हिताय कृष्णाय, गोविन्दाय नमो–नमः।।

कृष्णाय वासुदेवाय, देवकी–नन्दनाय च।
नन्द–गोपकुमाराय, गोविंदाय नमो – नमः।।

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वम–एव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्व मम देव देव।।

श्रीगणेशस्तुति

एकदन्त–वक्रतुण्ड, नागयज्ञ–सूत्रकम्।
रक्तगात्र–धूम्रनेत्र, शुक्लवस्त्र–मण्डितम्।।
कल्पवृक्ष–भक्त रक्ष, नमोस्तु ते गजाननम्।

पाशपाणि–चक्रपाणि, मूषकादि–रोहिणम्।
अग्निकोटि, सूर्य–ज्योति, वज्र कोटि–निर्मलम्।।

चित्र–भाल भक्तिजाल, भालचन्द्र शोभितम्।
कल्पवृक्ष–भक्त रक्ष, नमोस्तु ते गजाननम्।।

भूतभव्य, हव्यकव्य–भृगृ–भार्गवा–चिर्तम्।
दिव्य–वहनि कालजाल–लोकपाल वन्दितम्।।

पूर्णब्रह्म–सूर्यवर्ण पुरुषं पुरान्तकम्।
कल्पवृक्ष भक्त रक्ष, नमोस्तु ते गजाननम्।।

विश्ववीर्य, विश्वसूर्य, विश्वकर्म निर्मलम्।
विश्वहर्ता, विश्वकर्ता, यत्र तत्र पूजितम्।।

चतुर्मुखं चतुर्भुजं सेवितं चतुर्युगम्।
कल्पवृक्ष–भक्त रक्ष, नमोस्तु ते गजाननम्।।

ऋद्धि बुद्धि, अष्ट सिद्धि, नवनिधान दायकम्।
यज्ञ–कर्म – सर्वधर्म, सर्ववर्ण अर्चतिम्।।

पूत–धूम्र – दुष्ट–मुष्ट – दायकं विनायकम्।
कल्पवृक्ष–भक्त रक्ष, नमोस्तु ते गजाननम्।।

लिंगाष्टकम्

ब्रह्मा मुरारीः सुरार्चित लिंगं, निर्मल–भासित–शोभिम–लिंगम्।
जन्मज–दुःख–विनाशक–लिंगं, तत्प्रणमामि सदा–शिव–लिंगम्।।
देव–मुनि–प्रवरा–र्चितलिंगं, कामदहं, करुणाकर–लिंगम्।
रावण–दर्प–विनाशित–लिंगं, तत्प्रणमामि सदा–शिव–लिंगम्।।
सर्व–सुगन्धि सुलेपित–लिंगं, बुद्धिविवर्धन–कारण–लिंगम्।
सिद्ध–सुरासर–वंदित–लिंगं, तत्प्रणमामि सदा–शिव–लिंगम्।।
कनक–महामणि–भूषित–लिंगं, फणिपति–वेष्टित–शोभित–लिंगम्।

दक्ष–सुयज्ञ–विनाशक–लिंगं, तत्प्रणमामि–सदा–शिव–लिंगम् ।।
कुंकम–चंदन–लेपित–लिंगं, पंकज–हार–सुशोभित–लिंगम् ।
संचित–पाप–विनाशन–लिंगं, तत्प्रणमामि–सदा–शिव–लिंगम् ।।
देव–गणार्चित–सेवित–लिंगं, भावेर्भक्तिभिरेव–च–लिंगम् ।
दिन–कर–कोटि–प्रभा–कर–लिंगं, तत्प्रणमामि–सदा–शिव–लिंगम् ।।
अष्ट–दलोपरि–वेष्टित–लिंगं, सर्व–समुद्र–भव–कारण–लिंगम् ।
अष्ट–दरिद्र–विनाशित–लिंगं, तत्प्रणमामि–सदा–शिव–लिंगम् ।।
सुरगुरु–सुरवर–पूजित–लिंगं, सुरवर–पुण्य–सदा–चिर्त–लिंगम् ।
परात्परं–परमात्मक–लिंगं, तत्प्रणमामि–सदा–शिव–लिंगम् ।।

विष्णुस्तुति

जय नारायण, जय पुरुषोत्म, जय वामन कंसारे।
उद्धर मामसुरेश–विनाशिन्, पतितोहं संसारे।।
घोरं हर मम नरकरिपो, केशव कल्मषाभारम्।
माम् अनुकम्पय दीनम्–अनाथं, कुरुभव–सागरपारम्।।

घोरं हर मम.........

जय जय देव जया–सुरसूदन, जय केशव जय विष्णो।
जय लक्ष्मीमुख–कमल–मधुव्रत, जय दशकन्दर जिण्णो।।

घोरं हर मम ....

यद्यपि सकलम्–अहं कलयामि, हरे नहि किम्–अपि स सत्वम्।
तत् अपि न मुंचति माम्–इदम्–अच्युत, पुत्रकलत्र–ममत्वम्।।

घोरं हर मम ....

पुनर्–अपि जननं पुनर्–अपि मरणं, पुनर–अपि गर्भ–निवासम्।
सोढुम–अलं–पुनर्–अस्मिन्–माधव, माम–उद्धर निजदासम्।।

घोरं हर मम ....

त्वं जननी जनकः प्रभुर्–अच्युत, त्वं सुहृत्–कुलमित्रम्।
त्वं शरणं शरणा–गतवत्सल, त्वं भव–जलधि – वहित्रम् ।।

घोरं हर मम ....

जनक–सुता–पति–चरण–परायण, शंकर मुनिवर गीतम्।
धारय मनसि कृष्ण–पुरुषोतम, वारय संसृति–भीतिम्।।

घोरं हर मम ....

श्री हरि भज

श्री हरि भज, श्री हरि जप, बोल श्री हरि का नाम।
मंगलकारी, दुःखहारी, कष्ट निवारक मेरे प्रिय घनश्याम।
ब्रह्मा, विष्णु, महेश; श्वेताम्बर, पीताम्बर, बाघम्बर धारी।
आलौकिक छटा प्रिय और मुस्कुराहट कितनी दिव्य प्यारी।
श्री कृष्ण, श्री राम; श्री हरि के ही कई रुप व नाम।

- श्री हरि भज, श्री हरि जप, बोल श्री हरि का नाम।

श्री ब्रह्मा ही श्री शिव है, श्री हरि के असंख्य अवतार।
श्री विष्णु ही श्री गणेश है, श्री हरि सिद्धदाता तारनहार।
जो जपे श्री हरि और करें चिंतन मनन घोर विचार।
होई कृपा श्री हरि की, पापी भी तर जाए भवसागर पार।

- श्री हरि भज, श्री हरि जप, बोल श्री हरि का नाम।

जो करे अपने मन से, श्री हरि का जाप व नाम सिमरण।
निर्मल हो जाए मानव चित, शुद्धमन और अन्तकरण।
जो कोई करे गुरु, बुद्ध, महावीर, नानक का जप व ध्यान।
होई कृपा श्री हरि की और हो जाए सुरेन्द्र उनका कल्याण।

- श्री हरि भज, श्री हरि जप, बोल श्री हरि का नाम।

आरती ओउम् जय जगदीश हरे

ओउम् जय जगदीश हरे, स्वामी जय जगदीश हरे।
भक्त जनों के संकट, क्षण में दूर करे।।

ओउम् ज़य ....

जो ध्यावे फल पावे, दुःख बिन से मन का।
सुख सम्पति घर आवे, कष्ट मिटे तन का।।

ओउम् जय ....

मात पिता तुम मेरे, शरण गहूँ किसकी।
तुम बिन और न दूजा, आस करुं जिसकी।।

ओउम् जय ....

तुम पूरण परमात्मा, तुम हो अन्तर्यामी।
पार ब्रह्म परमेश्वर, तुम सब के स्वामी।।

ओउम् जय ....

तुम हो एक अगोचर, तुम सब के प्राणपति।
किस विधि मिलू दयालू, तुम को मैं कुमति।।

ओउम् जय ....

दीन बन्धु दुःख हर्ता, ठाकुर तुम मेरे।
अपने हाथ उठाओ, द्वार पड़ा हूँ तेरे।।

ओउम् जय ....

विषय विकार मिटाओ, पाप हरो देवा।
श्रद्धा भक्ति बढ़ाओ, सन्तन की सेवा।।

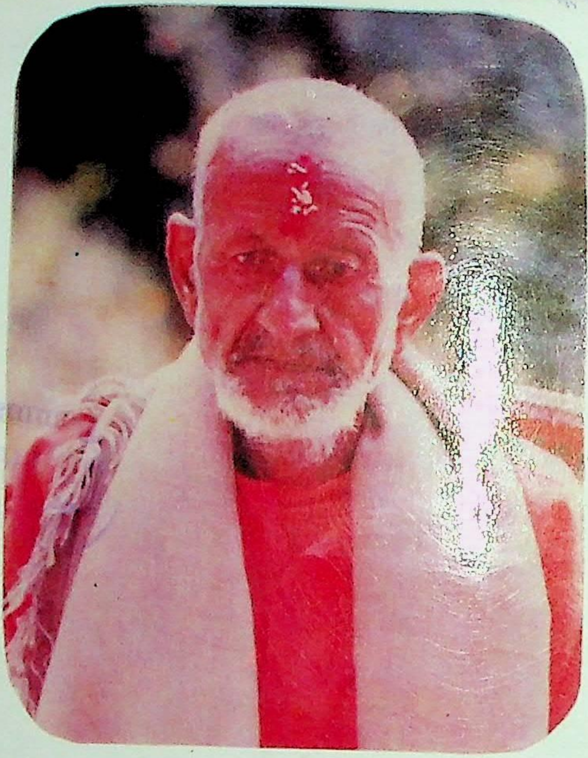
ओउम् जय ....

ओउम् जय जगदीश हरे, स्वामी जय जगदीश हरे।
भक्त जनों के संकट, क्षण में दूर करे।।

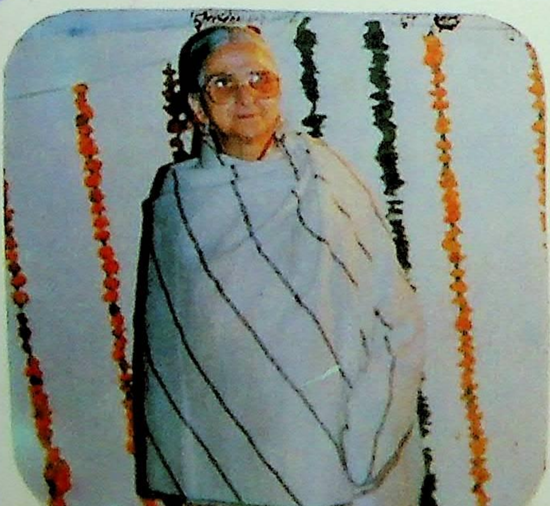
ओउम् जय ....

जय शिव–शक्ति

–:समाप्त:–



परम पूज्य श्री श्री श्री राम प्रकाश ब्रह्मचारी जी महाराज



परम पूज्यनीय माताश्री श्रीमती गौरी चन्ना